वेद के संबन्ध में क्या जानो और क्या भूलो

वेद के संबन्ध में क्या जानो और क्या भूलो

माला का द्वितीय पुष्प

स्व० स्वामी समर्पणानन्द जी सरस्वती
वेदों के दिवाने आर्यराष्ट्र के उद्घोषक शास्त्रार्थ केशरी
(पं० बुद्ध देव जी विद्यालंकार)

प्रकाशक:—

वर्णाश्रम संघ

प्रभात आश्रम

भोला झाल (मेरठ)

लेखक:—

स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती

मूल्य:— ५० पैसे

मुद्रक:—

विद्या प्रिन्टिंग प्रेस,

मेरठ।

श्री:

सं० ४३६२ रामदल दरीवाकलां, देहली

शुद्ध वैशाख १७-५-च० २०१

आलोचना

किसकी सेना में भरती होंगे ? कृष्ण की या कंस का ?

श्री बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार द्वारा प्रणीत उक्त निबन्ध देखा। यह श्री रत्नलाल वंशल के "गो-पूजा" लेख के उत्तर में लिखा गया है। निबन्ध विद्वतापूर्ण लिखा गया है। उनका अनुसन्धान बहुत दूर तक पहुंचा हुआ है। कई बातों में मतभेद होने पर भी विद्वान् लेखक का पशु की वसा आदि के हवन का तात्पर्य बताना हमें बहुत पसन्द आया। उसमें असंगति भी पड़ती दिखाई नहीं देती। लेकिन इतनी गहराई के तात्पर्य में ले जाने से भय है, कि कहीं साधारण जनता इस तात्पर्य को कृत्रिम न समझ ले। "धेन्वै चानडुहश्च नाश्नीयात्, तदुहोवाच याज्ञवल्क्योऽश्नाम्येवाहमंसलं चेद् भवति" "मांसौदनम् पाचयित्वा" इत्यादि शतपथ के प्रमाणों का वास्तविक तात्पर्य अच्छे प्रकार से बता दिया गया है। "अन्य: सह विवादेतु वयं पंचोत्तरं शतम्" इस न्याय से जब कि यह निबन्ध सनातन धर्म तथा आर्य समाज से भिन्न बंसल के लेख पर लिखा गया है, तब सनातन धर्म पर कई छींटे डाल देना उचित प्रतीत नहीं होता। मेरा भी "बंसल का गो-माता से विद्रोह" लेख दैनिक सन्मार्ग काशी में निकल चुका है। हमने उसमें सभी वचनों की व्यवस्था बताई है।

लेखक—दीनानाथ शास्त्री, विद्यावागीश, रामदल।

ओ३म्
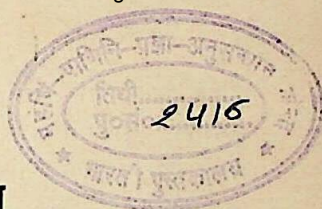
लेखक का परिचय

पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी सरस्वती (पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार) पारदर्शी विद्वान् थे। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के प्रारम्भिक दिनों में सात वर्ष की अल्पायु में ही प्रवेश लिये और वहां चौदह वर्ष तक लगातार स्वामी श्रद्धानन्द जी की छत्रछाया में अध्ययन किये। उसके पश्चात् आप उसी विश्वविद्यालय के आचार्य तथा उपकुलपति रहे। आपका समस्त जीवन तपोमय तथा त्यागमय था, जिसे देखकर प्राचीन युग के सच्चे ब्राह्मण अर्थात् कुम्भी धान्य कहे जाने वाले ब्राह्मणों का चित्र सामने आ जाता था। लक्ष्मी सारे जीवन आपके पैरों की ठोकरें खाती रही। जिसका परिणाम जीवन के अन्तिम दिनों में व्यक्तिगत सम्पत्ति नाम की कोई भी वस्तु आपके पास नहीं थी। आपका अगाध पाण्डितय प्रतिपक्षियों को विस्मय कर देने वाला था। संस्कृत भाषा में कविता करने की विलक्षण प्रतिभा के धनी आप थे। आपकी रचनायें प्राचीन कवि गुरु कालीदास की रचनाओं को आत्मसात् करने की क्षमता रखती हैं। वेद विद्या की सूझ तो आपकी अनुपमेय थी। आपकी इस अलौकिक विद्वत्ता को देखकर प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० भगवद्दत्त जी ने कहा था "धरीत तलपर वेदविषय में पं० बुद्धदेव जी (स्वामी जी का पूर्व नाम) जैसी सूझ किसी की नहीं।" आपका शतपथ ब्राह्मण का भाष्य निराला तथा अपने ढंग का अकेला है। प्राचीन महर्षियों की यज्ञ विद्या का रहस्योद्घाटन करने वाला है। आजतक यह अद्भुत ग्रन्थरत्न यज्ञ में मारे जाते हुये पशुओं के आर्त्तनाद तथा रुधिर और मांस से सना हुआ था, इसका

आपके भाग्य द्वारा उद्धार हुआ। अब यह ग्रन्थ नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं शिक्षाशास्त्र का अनुपम भण्डार दिखाई देता है। मरूत् सूक्त, सप्तसिन्धु सूक्त, शतपथ में एक पथ, शम्बरा सुर, सोम, स्वर्ग आदि ग्रन्थ वैदिक वाङ्मय पर आपके सफल गवेषणात्मक कार्य हैं।

आप का "कायाकल्प" मानव समाज तथा वर्णाश्रम मर्यादा का कायाकल्प करने का घोषणापत्र है। पञ्चमहायज्ञ की व्याख्या के लिये "पञ्चयज्ञ प्रकाश" वास्तव में प्रकाश का काम करता है। ऋग्वेद का मणिसूक्त नामक ग्रन्थ की रचना करके विश्व के वेद विरोधी ही क्या वेदभक्त विद्वानों को भी आपने आश्चर्य चकित करने का कार्य किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ "वेदों के सम्बन्ध में क्या जानो और क्या भूलो" में उस विलुप्त वेद प्रवेश सरीण पर प्रकाश डाला गया है जिसकी महर्षि दयानन्द ने अपनी समाधिज बुद्धि से गवेषणा की थी। उसे ही आपने अपनी विचित्र सूझ बूझ से परिष्कृत तथा स्पष्ट कर इस ग्रन्थ में रख दिया है।

जीवन में अनेक शास्त्रार्थ करके पौराणिक दिग्गज पण्डितों को जहां आप परास्त करने में सिद्धहस्त थे, वहां पाश्चात्य वेद विरोधी विद्वानों को भी मौन कर देते थे। कभी शुद्धि आन्दोलन में तो कभी राजनैतिक आन्दोलन में जहां भी आर्य समाज को आपके बलिदान की आवश्यक्ता हुई, वहीं सहर्ष सिर आगे बढ़ाया। इस प्रकार विभिन्न कार्य क्षेत्रों के महारथी रहते हुये भी आपके द्वारा असाधारण तथा दर्जनों ग्रन्थों की रचना हुई जो आपकी चौमुखी प्रतिभा तथा विलक्षण कार्यशक्ति की परिचय देते हैं। मृत्यु शय्या पर भी आप आर्य समाज की ही चिन्ता करते रहे। वर्णाश्रम व्यवस्था के उद्धार के लिये आपने अपने जीवन के तिल तिल की आहुति दी। आपके द्वारा सुलगाई इस भट्टी में हम अपने सर्वस्य की आहुति देकरके उस अग्नि को सर्वदा, सर्वथा प्रज्वलित रखेंगे।

पूज्य गुरुवर्य स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज के समस्त साहित्य के प्रकाशन का एक मात्र अधिकार उनके उत्तराधिकारी वर्णाश्रम संघ को है वर्णाश्रम संघ ने सर्व प्रथम वैदिक अग्नि प्रकाश नामक ग्रन्थ जिसमें स्वामी जी के पन्जाब हिन्दी रक्षा आन्दोलन के समय के जेल के व्याख्यानों का संग्रह है। यह द्वितीय पुष्प "वेदों के सम्बन्ध में क्या जानो और क्या भूलो" आपके हाथों में आ रहा है (यह ग्रन्थ भी अम्बाला में किये गये वेद महा सम्मेलन के अध्य-क्षीय पद से दिया गया उनका भाषण ही है। मैंने अभी गुरुदेव के द्वारा लिखित छोटे साहित्यों के प्रकाशन का ही कार्य सम्भाला है। क्योंकि शतपथ ब्राह्मण का भाग्य लगभग पौने दो हजार पृष्ठ। ऋग्वेद का मणिसूत्र साढ़े तीन सौ पृष्ठ का ग्रन्थ है। जिसके छपवाने में पचास सहस्र रुपयों के व्यय की सम्भावना है, इस प्रकार उनके छोटे बड़े समस्त साहित्य में लगभग ९० सहस्र या एक लक्ष रुपये की बड़ी राशि लगेगी। आर्य जनता स्वामी जी के गम्भीर तथा विशद् साहित्य से सुपरिचित है। उनके लिखे हुये साहित्य का धनाभाव के कारण प्रकाशित न होना आर्य समाज की ही क्यों वैदिक साहित्य की महती क्षति है। अतः सभी वेद प्रेमी सज्जनों से निवेदन है कि वे अपनी श्री सत्पात्र में दान देकर लखपति, करोड़ पति नहीं किन्तु सच्चे रूप में श्रीपति बने ? स्वामी जी के साहित्य प्रकाशन का कार्य द्रुतगति से चल रहा है। उसकी व्यवस्था के लिये वर्णाश्रम संघ के जीवनदानी शासन परिषद के सदस्य ब्र० वेद पाल जी सुनीथ व्याकरणाचार्य को नियुक्त किया गया है। पुस्तक क्रेता तथा विक्रेता महानुभाव उन्हीं से सम्पर्क करें।

विवेकानन्द सरस्वती
प्रधान वर्णाश्रम संघ
प्रभात आश्रम नेक टीकरी
नेक (मेरठ)

श्रद्धेय पूज्य आर्य सज्जनों !

आपको यह जानकर अपार हर्ष होगा कि पूज्यपाद स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज के साहित्य के प्रकाशन का कार्य अब वर्णाश्रम संघ ने प्रारम्भ कर दिया है। उनके समस्त साहित्य आपको उचित मूल्य पर मिल सकेंगे। उनका साहित्य सस्ते से सस्ते मूल्य पर दिया जा सके इसके लिये आर्य दानी महानुभावों को भी अपनी थैली द्वारा खोल देना चाहिये। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने जिस विलुप्त वर्णाश्रम व्यवस्था की खोज की उसी की पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी ने अपने जीवन के तिल तिल की आहुति देकर उद्धार किया, हम भी उसी वेद द्रष्टा दयानन्द का तथा दयानन्द द्रष्टा समर्पणानन्द के पद चिन्हों पर चलकर उनके लगाये हुये इस शैशव वृक्ष को अपने लहू और खूनों से सींचकर पुष्पित और पल्लवित करेंगे, जिसकी छाया में विश्राम करके समस्त मानव समाज सुख और शान्ति का अनुभव करेगा। मैं तथा मेरे सुहृद् बन्धुवर महावीर जी व्याकरणाचार्य (महाराष्ट्र) अपने प्राणों के अन्तिम सांस तक इसके प्रचार और प्रसार के लिये बढ़ते रहेंगे। यही हम दोनों भाइयों का निश्चय है ? 'प्रभु हमें शक्ति प्रदान करें।

आर्य जनता का कृपाभिलाषी

बा० वेदपाल सुनीथ, व्याकरणाचार्य

॥ ओ३म् ॥

नूनव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः प्रत्नवद् रोचयारुचः ।
ऋग्वेद, ९ मण्डल ९ सूक्त ८ मंत्र

तू प्रतिदिन नये और उससे भी नये सुभाषितों के लिये रास्ता बना और उस रास्ते को ऐसा रुचिकर बना जैसे तुझसे पहिले विद्वान बनाते आये हैं।

साटोपं वादिवृन्दैरहमहमिकया सम्पतद्भिस्सलीलम् ।
खेलन् मन्दस्मिताभामयसुर सरितादत्तलोकाभिषेकः ।

छिद्रान्वेषेष्व्यलाभादुपहतमतिना वीक्षितश्चित्तजेन ।
योगीन्द्रः कोऽपिचित्तो मम कृतवसतिः पापबुद्धि दुनोतु

वेदानुरागी सज्जनो !

शिष्टाचारानुसार सभापति पद प्राप्ति के लिये सभापति की ओर से सबको धन्यवाद दिया जाता है, कार्य की गति विधि पर सिंहावलोकन किया जाता है, भविष्य के लिये कार्यक्रम सम्बन्धी सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं परन्तु मैं तो यह सब कार्य अपने अभिभाषण के अन्त में करूंगा सो भी अति संक्षेप से इस समय तो शिष्ट मर्यादा व्यतिक्रम के लिये क्षमा याचना करके आगे बढ़ता हूं।

मुझे धन्यवाद तथा गुणगान करना है परन्तु मैं गुणगान करता हूं उस प्रभु का जिसकी कृपा से हम सब आज यहां इकट्ठे हुए हैं और गुणानुवाद करता हूं उस ऋषि का जो उस प्रभु की कृपा का मूर्त्तिमान् फल था, धन्यवाद करत हूं उस विशाल चट्टान का जिसने विश्व भर में बहते हुए वेद विरोधी प्रवाह को अपनी छाती पर झेल कर उसे एकदम उलटा कर दिया। धन्यवाद करता हूं, उसका जिसने उलटे को उलटा करके हमें सीधा मार्ग दिखाया। धन्यवाद करता हूं उस विचित्र वास्तुविशारद विश्वकर्मा का जिसने मानवजाति के उज्ज्वल भविष्य रूपी विशाल भवन का इतना विशाल मानचित्र बनाया कि सौ वर्ष में तो उसकी नींव भी पूरी तरह उभरती दृष्टिगोचर नहीं हुई, भवन तो कब तैयार होगा। मैं तो इस मानचित्र पर ही मुग्ध हूं भवन जब बनेगा तब वह क्या होगा यह तो कल्पना के द्वारा ही आस्वादनीय है। हे प्रभु! मेरा यह सिर और ऐसे सहस्रों सिर इस भवन के निर्माण में ईंटों के स्थान पर लग जावें और इस शिरोदान यज्ञ में हम गौरव अनुभव करें यही तुझसे वर मांगते हैं और जन्म जन्मान्तर में जब नया सिर मिले तो फिर इस भवन की ईंट बनें यही फल है, जो हमें प्यारा है, हम और कुछ नहीं मांगते तेरी यही इच्छा हो और तेरी इच्छा पूर्ण हो।

आज इस वेदसम्मेलन में हम वेद सेवा के लिये इकट्ठे हुए हैं। वेद की सेवा का ऋषि दयानन्द ने हमें किस प्रकार मार्ग दिखाया उसमें क्या बाधा है और क्या साधन है यही विषय आज आपके सामने प्रस्तुत करता हूं।

卐

॥ ओ३म् ॥

ऋषि दयानन्द की वेदार्थ प्रणाली

ऋषि दयानन्द अपने समय में अपने ढंग के अकेले थे। अकेले बिल्कुल अकेले, सौ में अकेले, हजार में अकेले, लाख में अकेले, करोड़ में अकेले दुनिया के दो अरब मनुष्यों में अकेले। बस साथी था तो वह भगवान् था जिसने उन्हें सारे विश्व से निराले होकर वेद के सच्चे अर्थ समझाने की सामर्थ्य दी।

उन्हें किस किस का सामना करना पड़ा ?

भारत में अन्ध विश्वास तो थे ही, किंतु वेद के अर्थ को विपरीत करने में उनके सामने जो सबसे बड़ा अन्ध विश्वास खड़ा था, वह विकास वाद का अन्धविश्वास था। इस घोर अन्धविश्वास को पश्चिमीय विज्ञान तथा पश्चिम की कुटिल राजनीति दोनों का समर्थन प्राप्त था। पश्चिमी विकासवादी कहते थे, 'प्राचीना आर्या मूर्खाः प्राचीनत्वात् अस्मदीय प्राचीन पुरुषवत्।' इस हेत्वाभास भरे अनुमान को देखकर हंसी भी आती थी और रोना भी। हंसी इसलिये आती थी मानो कोई किसी सती को कह रहा हो 'सतिपत्यौ त्वं विधवा स्त्रीत्वात् प्रतिवेशिनीवत्।

वेद में कितनी ही बुद्धिमत्ता पूर्ण बात लिखी हो किंतु उसका अर्थ उलटा ही होना चाहिये नहीं तो समझ लो कि वेद का पाठ विकृत हो गया है। वेद में बुद्धि पूर्वक बात हो ही नहीं सकती क्योंकि मानव के वैदिक पूर्वज

हमारी अपेक्षा बन्दर के अधिक समीप थे। यदि आप इस विकासवाद के अन्ध-विश्वास का खेल देखना चाहें तो अथर्ववेद के इस मंत्र का सायण तथा ग्रिफिथ का अनुवाद देख लीजिये।

मुग्धा देवा उतशुनायजन्त उतगोरङ्गैः पुरुधा यजन्त य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणोवोचस्तमिहेह ब्रवः ॥

अथर्व कां ७ सू० ५ मन्त्र ५

इसका सायण कृत भाष्य इस प्रकार है—

ते देवा यजमानाः मुग्धाः कार्याकार्य विवेक रहिता इत्यर्थः ॥

कुत्ते से ! इस विषय का कोई उपाख्यान जो इस विचित्र यज्ञ का वर्णन करता हो, उपलब्ध नहीं है। मुग्धाः यह असम्भव प्रतित होता है कि मुग्धाः (बौखलाये हुए मोह वशीभूत) यह पाठ यहां ठीक हो। यहां तो तृतिया-विभक्ति के किसी नाम की आवश्यकता थी क्योंकि प्रकरण ऐसा ही है। विक्टहेनरी महाशय ने मूर्ध्ना यह पाठ कल्पित कर लिया है। जिस का अर्थ है सिर से, जिससे तात्पर्य है दधीचि की ग्रीवा पर लगे हुए घोड़े के सिर से है जोकि बर्गेन महाशय के मतानुसार अग्नि वा सोम का प्रतीक है।

ग्रिफिथ का अनुवाद देखिये—

With dog the Gods, perplexed, have paid oblation, and with cow's limbs in sundry sacrifices.

Invoke for us, in many a place declare him who with his mind hath noticed this our worship.

देवो ने परेशान होकर कुत्ते की भेंट अर्पित की और गऊ के अंगों के साथ छोटी भेंटे दी। अनेक स्थानों पर उसको हमारे लिये जगाओ जिसने हमारी इस भेंट पूजा को देखा है।

अनुवाद तो सायरण का है परन्तु इस पर ग्रिफ़िथ की टिप्पणी देखने योग्य हैं—

With dog: no legend refering to this extraordinary sacrifice has survived. Perplexed: it seems impossible that mgdh's (perplexed, infatuated) can be the right reading here. A substantive in the instrumental case is required by the context. M. victor henry reads murdhna, with the head, that is, with the horse's head given to Dadhyach, which, according to M. Beraigne (Religion, Vedique, 11 page 458) symbolizes Agni or soma.

इस प्रकार कुत्ते की यज्ञ भेंट करने वाली कोई दन्त कथा हमें उपलब्ध नहीं होती इस मन्त्र में 'मुग्धा' का पाट असम्भव प्रतीत होता है। प्रकरणानुसार यहां तृतीया विभक्ति होनी उचित प्रतीत होती है इसलिये यहां मुग्धाः के स्थान पर 'मूर्ध्ना' घोड़े का सिर दधीचि को भेंट में दिया जाना सम्भव हो सकता है। श्री मौशियर बर्गेन (Religion Vedic 11 Page 158) पृ० ४५८ जो कि अग्नि और सोम हो सकता है।

यह देखिये विकासवाद की करामात। क्योंकि ग्रिफिथ साहिब को विचारधारा से यह मन्त्र मेल नहीं खाता इसलिये मन्त्र ही बदल डालना चाहिये।

सुनते हैं कि गवर्गण्ड के राज्य में एक मनुष्य को फांसी हुई। फांसी का फंदा उसके गले में पूरा नहीं आया हुक्म हुआ कि जिसके गले में पूरा उतरे उसी को फांसी टांग दो यही हाल यहां है। हमारे विकासवाद का फन्दा इस मन्त्र के गले में पूरा नहीं उतरा, तो बस नया मन्त्र बनाकर उसी को अथर्ववेद का मन्त्र समझ लो। यह है विकासवाद का अन्धविश्वास।

इस वाद का आजके युग में इतना आतङ्क है कि इसके विरुद्ध कुछ बोलना उपहास को नियन्त्रण देना है, परन्तु हमारी समझ में नहीं आता कि इसमें जान क्या है।

विकासवाद का मूलाधार है प्राणयात्रा जन्य परिवर्तन, प्राण की रक्षा के लिये जिसे नंगे पांव चलना पड़े उसके पैर का चमड़ा धीरे धीरे मोटा तथा शीतोष्णादि द्वन्द्व सहन समर्थ हो जाता है। जिसे नंगे पैर न चलना पड़े उसका चमड़ा नरम पड़ता जाता है परन्तु यह नियम एक सीमा तक ही चलता है।

सींग, पूंछ, पंख आदि जो अंग मनुष्य के पास नहीं हैं, उन सबकी उसे आवश्यकता है। यदि न होती तो नाना प्रकार के शस्त्र नाना प्रकार के नौका विमानादि तथा चामर और बिजली के पंखे आदि वह क्यों बनाता है। परन्तु आज तक उसके यह अंग क्यों प्रकट नहीं हुए जो जातियां सहस्रों वर्षों से नदी के किनारे रहती हैं और केवल मछली मारकर जीवन निर्वाह करती हैं, उनका सद्यो जात शिशु तैरना क्यों नहीं जानता क्या करोड़ों वैज्ञानिक अन्धविश्वास वश हम पर रौब डालने के लिये हाथ उठाकर चिंघाड़ चिंघाड़ कर कहेंगे कि उन्हें तैरने की आवश्मकता नहीं रही इसलिये वे तैरना भूल गये, तो भी इस बात पर अन्ध श्रद्धा के सिवाय किसी दूसरे आधार पर विश्वास किया जा सकता है? कदापि नहीं।

दूसरी ओर जो भैंस सहस्त्रों वर्ष से राजपूताने में रहती है, जिसे कभी डूबने योग्य पानी में तैरने का अवसर वर्षों में एक आध वार आता होगा। उसका सद्यो जात शिशु पानी में घुसते ही क्यों तैरने लगता है।

मानव जगत् तथा मानवेतर जगत् का यह पर्वताकार भेद आंखों से कैसे परे किया जा सकता है ? इसे आंखों से परे करने का एक ही उपाय है। विकासवादियों के भय के मारे आंखें बन्द करले। बस फिर तो अन्धकार के सिवाय कुछ नहीं परन्तु जब तक मस्तिष्क में तर्क की एक चिनगारी भी शेष है कोई आंखें कैसे मूंद ले।

अब लीजिये कछुए को यह विचित्र जन्तु है इसे जरा उलट दीजिये बस फिर एक पग भी नहीं चल सकता इसलिये यदि कोई मोटर कार उलट जाये तो अंग्रेजी में कहा जाता है:—The car has turned turtlle. परन्तु इससे भी विचित्र बात यह है कि इस जन्तु की पीठ पत्थर से भी अधिक कठोर है। दूसरी ओर इसका पेट अति सुकुमार है, हम पूछना चाहते है, कि इस जानवर की पीठ कब और कहां रगड़े खा खा कर कितने करोड़ वर्ष में इतनी कठोर हो गई ? तब क्या यह पीठ के बल चलता था, और फिर इसका पेट बराबर नरम है यह कितने करोड़ वर्ष में कठोर होगा और अब यह पीठ के बल चलना एक दम क्यों भूल गया वह करोड़ों वर्षों की आदत एक दम कहां रफूचक्कर हो गई। इसके पेट की सुकुमारता को देख कर तो कहा जा सकता है कि इसे पैरों के बल चलते मुश्किल से कुछ हजार वर्ष हुए होंगे वह करोड़ों वर्षों की पीठ के बल चलने की आदत कुछ हजार वर्ष में कहां भाग गई और इसके पैर तो अभी तक पत्थर के समान कठोर नहीं हुए।

अब एक और जीव श्रेणी लीजिये। इन में से मैं मोर और कोयल को लेता हूं। प्राण रक्षा के निमित्त परिश्रम करने से मोर के पञ्जे तीक्षण

हो गये हों । डैने बलवान् हो गये हों । चोंच कठोर हो गई हो यह सब कुछ तो समझ में आता है, परन्तु यह सुन्दर पूंछ के चन्दे कहां से आ गये । मोर के कण्ठ तथा पूंछ की सुन्दरता तथा कोयल के कण्ठ की काकली का जन्म कैसे हुआ ? इस लम्बी सुन्दर पूंछ का सौंदर्य कहां से आया और नृत्य कला मोर ने कहां से सीखी ? उत्तर मिलता है कि सौंदर्य पर हीं मोहित होकर मोरनी मोर की ओर आकृष्ट होती है इसलिये यह उसकी प्राण रक्षा के लिये आवश्यक है वाहजी वाह यह भी एक रही । पहिले सुन्दर पूंछ बनी तब मोरनी आकृष्ट हुई, परन्तु प्रश्न तो यह है कि सुन्दर पूंछ बनी कैसे ? चेतना-हीन प्रकृति में इस सुन्दर कला कृति का विकास कैसे हुआ उत्तर एक ही हो सकता है तर्क की आंख मूंद लों और विकासवादी महामहोपध्याय जी के आगे हाथ जोड़कर कह दो सत्य वचन महाराज, नहीं तो आर्य समाजी कह कर तुम पर धरती से मिटा दिये जाने का फतवा लगा दिया जायेगा । परन्तु हमतो टलने वाले नहीं ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानव तथा मानवेतर जगत् में एक स्पष्ट भेद है ।

मानव बिना सिखाए कुछ नहीं सीखता ।

मानवेतर को जन्म से बहुत सी सिद्धिएं प्राप्त हैं । जिन्हें सीखने में मानव को सैंकड़ों वर्ष लग जाते हैं । कबूतर को उड़ने की सिद्धि भैंस को तैरने की सिद्धि रेशम के कीड़े को रेशम बनाने की तथा मधुमक्षिका को मधु तथा मधुकोष बनाने की सिद्धि, ये सिद्धियां इन जीवों को जन्म से प्राप्त हैं इसीलिए यह पशु अर्थात् द्रष्टा कहलाते हैं ।

दूसरी ओर मनुष्य मनु अर्थात् मननशील कहलाता है । मनुष्य में जो अपत्य प्रत्यय है, यह आलङ्कारिक है अर्थात् मनन की सन्तान अन्यथा मनुष्य तथा मनु पर्यायवाची हैं जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण के इस प्रमाण से सिद्ध है ।

होता मनुवृनोऽयं हि सर्वतो मनुष्यैर्वृतः

ऐतरेय १० अध्याय २ खण्ड ।

हमने देख लिया कि यह विकासवाद एक थोथी सारहीन निराधार तर्क विरुद्ध जर्जर कल्पना मात्र है किन्तु यही आज एक दीवार बनकर और हमारे सच्चे वेदार्थ के बीच खडी है। इस दीवार को तोड़ दो।

अदृष्टवाद अथवा अपूर्ववाद

वेद का सच्चा अर्थ जानने में बाधक दूसरा वाद नवीन मीमांसकों का अदृष्टवाद अथवा अपूर्ववाद है। वेदवाणी की महिमा गान करते हुए पतञ्जलि महाराज ने कहा है—

एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग्भवति।

अर्थात् —वेदवाणी का एक शब्द भी ठीक जानकर और उसे भली प्रकार प्रयोग में ले आवें तो वह कामधेनु है। इन मीमांसकों ने इसमें से सुप्रयुक्तः यह कड़ी उड़ा दी है सम्यग् ज्ञातः का अर्थ ये करते हैं सम्गुच्चारितः इसीलिए इन्होंने यज्ञों का खूब विध्वंश किया और उसके साथ ही वेद का भी खूब विध्वंश किया। यज्ञ प्रक्रिया का मूलतत्व जानने के लिये हमें दो शब्दों को समझना होगा।

तेज एव श्रद्धा सत्यमाज्यम् (शत. ११. २. ४. १)
अहुयतैव सत्यं श्रद्धायाम्।

अब इन मीमांसकों के कहे अनुसार उदात्तानुदात्त स्वरित का ठीक विचार करके सम्यक् मन्त्रोच्चारण पूर्वक घृत अग्नि में डाल दिया तो बस

तज्ञ का पूरा पूरा फल मिल जाएगा क्योंकि इस कर्म से एक में एक अदृष्ट अथवा अपूर्व पैदा होता है, फिर उस क्रिया कलाप का प्रत्यक्ष फल उस यज्ञ से चाहे बिल्कुल विपरीत क्यों न हो, किन्तु अदृष्ट का जादू सब विघ्नों को पार करके मनुष्य को इष्टसिद्धि तक पहुंचा देता है। यह अदृष्टवाद ही समस्त अन्ध विश्वासों का प्राण है। भारत का सारा अधःपतन इसकी कृपा से हुआ।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्नि प्रतीक है। श्रद्धा उसका प्रत्यान य है, प्रतीक प्रत्यक्ष है, प्रत्यायनीय अदृष्ट है, अर्थात् अग्निहोत्र में जब अग्नि जला कर उसमें घृत की आहुति करते हैं तो इस स्थूल क्रिया के पीछे श्रद्धा में सत्य की आहुति यह सूक्ष्म भावना छिपी है यह अदृष्ट है इसको जान कर जीवन में आचरण करने से मनुष्य का कल्याण होता है। किन्तु इसके विपरीत यह मध्यकालीन मांसल प्रज्ञ मीमांसक लोग विधि पूर्वक मन्त्रोच्चारण द्वारा अग्नि में घृत डालते ही यज्ञ पूरा हो गया और उसी समय यज्ञमान के परलोक बैङ्क में अदृष्ट का चैक जमा हो गया। यहां सम्यग् ज्ञातः के पश्चात् सुप्रयुक्तः का कुछ काम नहीं बस सम्यगुच्चारितः से काम पूरा हो गया। मीमांसकों के अदृष्ट का प्रतीक मात्र से सम्बन्ध है। प्रत्यायनीय से कुछ नहीं इसी लिए शतपथ ब्राह्मणादि समस्त ग्रन्थों के भाष्य उपहसनीय दीखते हैं।

वर्तमान युग के एक दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

कम्यूनिस्ट झण्डे पर हंसिया और हथोड़े का चित्र बना है। यह हंसिया और हथौड़ा प्रतीक हैं। हंसिया का प्रत्यायनीय है किसान और हथौड़े का प्रत्यायनीय है मजदूर।

अब यदि कहा जाय कि हंसिया हथौड़े की रक्षा करो। हंसिया हथौड़े के अपमान से राष्ट्र का नाश हो जाता है तो इसका अर्थ हुआ कि राष्ट्र के

किसान मजदूरों की रक्षा करो इनके अपमान से राष्ट्र का नाश हो जाता है। तब तो बिल्कुल ठीक है, परन्तु इसको न समझ कर कोई मनुष्य हथोड़े को नमस्कार करके फूल चढ़ाने लगे, तो उसे तो कुछ भी न मिलेगा और यदि हथौड़े को पैर से लात मारे तो थोड़ा सा पैर के तले में दर्द होकर रह जायगा, और तो इस अपमान का कुछ फल न होगा।

इस प्रकार हंसिया हथौड़े का, अदृष्ट किसान और मजदूर हैं। परन्तु मीमांसकों के विचारानुसार हंसियायें स्वाहा कर घृत की आहुति अग्नि मे डालते ही एक अदृष्ट पैदा हो जाता है, बस फिर कल्याण में क्या देर है।

इस अदृष्ट शब्द के ठीक न समझने से कितना भयङ्कर परिणाम हुआ यह कह कर नहीं बताना पड़ेगा हम अपनी बात को पुष्ट करने के लिये यहां शतपथ ब्राह्मण का एक प्रमाण उपस्थित करते हैं जो बिल्कुल पर्याप्त होगा।

तद्धैतज्जनको वैदेहः याज्ञवल्क्यम् पप्रच्छ वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्या ३ इति। वेद सम्राडिति। किमिति पय एवेति ।२। यत् पयो न स्यात् केन जुहुया इति। व्रीहियवा-भ्यामिति यद् व्रीहियवौ न स्याताम् केन जुहुया इति या आरण्या ओषधय इति। यदारण्या ओषधयो न स्युः केन जुहुया इति वानस्पत्येनेति यद्वानस्पत्यं न स्यात्केन जुहुया इत्यद्भिरिति यदापो न स्युः केन जुहुया इति ।३। स होवाच

न वा इह तर्हि किंचनासीदथैतदहूयतैव सत्यं श्रद्धायामिति। वेत्थ याज्ञवल्क्याग्निहोत्रं धेनुश्शतन्ते ददामीति होवाच ।४।

।।शत ११.२ २ से ४ तक।

सो यह इस प्रकार हुआ कि एक समय वैदेह जनक न याज्ञवल्क्य से पूछा—हे याज्ञवल्क्य ! अग्निहोत्र का तत्व जानते हो ?

याज्ञ०—हां सम्राट् जानता हूं।

जनक—किस पदार्थ से हवन करते हो ?

याज्ञ०—दूध से।

जनक—यदि दूध न मिले तो काहे से हवन करोगे ?

याज्ञ०—जौ चावल से।

जनक—यदि जौ चावल न मिले तो किससे हवन करोगे ?

याज्ञ०—तो जो कोई जंगली अनाज मिलेगा उससे।

जनक—यदि जंगली अनाज न मिले तो किससे हवन करोगे ?

याज्ञ०—तो जंगली फलों से।

जनक—यदि जंगली फल न मिलें तो किससे हवन करोगे ?

याज्ञ०—जल से।

जनक—यदि जल न मिले तो किससे हवन करोगे ?

तो इस पर याज्ञवल्क्य बोले—जब केवल वेद ही था, और यह सब क्रिया कलाप कुछ नहीं था, तब भी हवन होता ही था, वह हवन सत्य का श्रद्धा में होता था। इस पर जनक ने कहा कि हां याज्ञवल्क्य तुम यज्ञ को ठीक जानते हो, मैं तुम्हें सौ गाय देता हूं।४।

इसी लिये इसी प्रकरण में प्रथम काड में लिखा है कि—

वाग्ह वा एतस्याग्निहोत्रस्याग्निहोत्री । मन एव वत्स-स्तदिदं मनश्च वाक्च समानमेव सन्तानेव तस्मात् समान्या रज्वा वत्सं च मातरं चाभिदधाति तेज एव श्रद्धा सत्यमाज्यम् ।१।

इस अग्निहोत्र की दूध देने वाली गाय वाणी है ! मन उसका बछड़ा है । सो यह मन और वाणी एक समान होते हुये भी पृथक् से हैं । इसलिये एक रस्सी से गाय और बछड़े को बांधता है. यहां श्रद्धा अग्नि है और सत्य घृत है । यहां स्पष्ट है कि गाय वाणी का प्रतीक है और बछड़ा मन का प्रतीक है रस्सी दोनों के घनिष्ट सम्बन्ध का प्रतीक है । अग्नि श्रद्धा का और घृत सत्य का प्रतीक है ।

इस पर कहा जायगा कि तब तो यह अग्नि होत्रादि यज्ञ एक प्रकार के नाटक हुए, जिनमें शूर्प अग्निहोत्रहवणी पुरोडाशादि अभिनय करने आते हैं तो उसका उत्तर हां में है ।

भरतनाट्यशास्त्र में लिखा है यजुर्वेदादभिनयम् । नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने अभिनय यजुर्वेद से लिया इसीलिये अबतक नाटक में अभिनय कर्ताओं को पात्र कहा जाता है यज्ञों में जो काम पात्रों से लिया जाता था वह नाट्य में स्त्री पुरुषों से लिया गया किन्तु नाम वही पात्र रहा यही नहीं स्वयम् शतपथ ब्राह्मण में अग्निहोत्र को काव्य कहा गया है । ऊपर जो वाक्य उद्धृत किया गया है उसी प्रसङ्ग में याज्ञवल्क्य अपने से प्राचीन किसी ऋषि के श्लोकों का उद्धरण देकर अथवा स्वयम् निर्मित श्लोक उद्धृत करके कहते हैं ।

तदप्येते श्लोकाः। किस्विद् विद्वान् प्रवसत्यग्निहोत्री गृहेभ्यः कथमस्य काव्यम्। कथसंततोऽग्निरिति। कथंस्विद-स्यानपप्रोषितं भवतीत्येवैतदाह् ।५। यो जविष्ठो भुवनेषु स विद्वान् प्रवसन् विदे तथा तदस्य काव्यम् तथा संततोऽग्निरिति। मनएवैतदाह् मनसैवानपप्रोषितं भवतीति ।६।

जब अग्निहोत्री विद्वान् प्रवास में ही घर से बाहर हो तब क्या होगा ? प्रवास में रहते हुए भी अग्निहोत्र की दृष्टि से अप्रवास हो वह कैसे होगा उसके काव्य का क्या बनेगा अग्नि अविच्छिन्न कैसे रहेगा ? ।५। इस प्रश्न का उत्तर अगली कण्डिका में है, जो इस संसार में सबसे तीव्र गति वाला है। वह विद्वान् ज्ञान देने के लिये प्रवास में साथ है, उसी के द्वारा काव्य की रक्षा होगी, अग्नि अविच्छन्न रहेगा। सो यह इशारा मनकी ओर है मनके द्वारा प्रवास, अप्रवास हो जायगा। क्योंकि श्रद्धा रूप अग्नि, मन में है और अग्निहोत्र रूप काव्य उसके मन में उसके साथ है।

इस प्रतीक सत्यायनीय के रहस्य को न समझकर मध्यकालीन मीमांसकों ने विचित्र धाधली मचाई है। कात्यायन श्रौत सूत्र में लिखा है—
"अवकीर्णिनो गर्दभेज्या।"

अर्थात् जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत भङ्ग कर बैठे उसे गर्दभेज्या करनी चाहिये अत्र स्पष्ट है, कि ब्रह्मचर्य व्रत भङ्ग करने वाले का प्रायश्चित्त अभिष्ट है, इसलिये मूर्खता का प्रतीक गधा चुना गया। साथ ही यह भी बताया गया कि यदि तू गधे से कठिन परिश्रम करना तथा जो मिले खाकर प्रसन्न रहना

यह सीखेगा तो फिर ब्रह्मचर्य भङ्ग न करेगा यहि प्रायश्चित्त का भाव है। प्रायश्चित्त का अर्थ है प्र=अग्रे. अय:=गमनम्, चित्तम्=दृढ़ निश्चय: अर्थात् अग्रे गमनाय दृढ निश्चय: इस प्रकार हुआ। तूने भूल की गर्दभेज्या द्वारा तुझे दण्ड मिल गया, अब कमर कसके उठ और "आगे बढ़ने का दृढ़ निश्चय" कर अब तक यह गर्दभेज्या, भारत के ग्राम ग्राम में प्रचलित है। जब कोई ब्रह्मचर्य सम्बन्धी अपराध करता है, तो उसे गधे पर चढ़ाया जाता है। इस यज्ञ का स्थान भी वही शास्त्रोक्त है, अर्थात् चौराहा सो ब्रह्मचर्य का अपराधी गधे पर चढ़ कर चौराहे में घूमे यह तो प्रायश्चित्त हुआ, किंतु यह भी तब होगा जब प्रायश्चिती इसके भाव को ठीक जान कर, उस सुप्रयुक्त भी करेगा। केवल रीत निर्वाह मात्र से कुछ लाभ न होगा। यहा गधा तो मूर्खता अध्यवसाय और स्वल्पाहार का प्रतीक मात्र है। गधे पर चढ़ना तो दृष्ट है, अदृष्ट भावना तो गधे से कुछ सीखना है और कुछ भूलना है। मूर्खता का परित्याग, अध्यवसाय और तप का ग्रहण, यह इस प्रतीक का .त्यायतीय है। परन्तु अब मध्यकालीन मीमासको की लीला देखिये।

जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य भंग करे वह गधे को काटकर चौराहे में हवन करे।

भला पूछिये तो सही कि यह प्रायश्चित क्या हुआ, एक पाप को दूर करने के लिये उससे भी बड़ा पाप कर डाला, ब्रह्मचारी ने तो व्रत भङ्ग किया और गधा बेचारा निरपराध मारा गया परन्तु बोलिये मत अदृष्ट उत्पन्न हुआ अपूर्ण उत्पन्न हुआ। कहीं कोई मीमांसक आप पर भी प्रहार न कर बैठे।

जरा आगे और लीला देखिये। गधा मारा गया उसका बटवारा भी हो गया। एक भाग होता को एक अध्वर्यु को एक उद्गाता को एक यजमान

को मिला। परन्तु सबसे बढ़िया भाग तो ब्रह्मा जी को मिलना चाहिये। सो देखिये चौराहे में से कुछ दबाए लिये चले आ रहे हैं। आप उत्सुकता से पूछेंगे वह क्या है ? सो सुनिये। "शिश्नात् प्राशित्रा वदानम्" अर्थात् ब्रह्मा जी को गधे का............मिले। जब घर पहुंचेंगे तो ब्रह्मा जी की पत्नी और बच्चे यह प्रसाद पाकर कितने प्रसन्न होंगे वाह वाह कैसे उछलेंगे। बोलो मत अदृष्ट उप्पन्न हुआ है।

इस पर आप पूछेंगे कि तुमही कहो कि इस सूत्र का अर्थ क्या है ? तो सो सुनिये इस प्रकार उपस्थेन्द्रिय का दुरुपयोग करने वाले बालक को चतुर्वेदविद् ब्रह्मा, जो इस विज्ञान का विशेषज्ञ हो, उसकी शरण में ले जावें और उसकी देख रेख में रह कर इस इन्द्रिय का पूर्ण सुधार करें, जिससे फिर भूल न हो, तब प्रश्न होगा कि फिर वह ब्राह्मण खावें क्या ? उत्तर यह है कि इस सुधार के विज्ञान से ही उनकी जीविका भी चलेगी, जिस प्रकार नेत्र विशेषज्ञ नेत्र की कमाई खाते हैं इसी प्रकार शिश्न विशेषयज्ञ शिश्न सुधार की कमाई खावेंगे और यह श्रद्धा पूर्वक उन तक पहुंचाना यजमान का कर्तव्य है इसलिये इसे यज्ञ का अंग बनाया। इस प्रकार हुआ "शिश्नात् प्राशित्रावदानम्" सो इस प्रतीक प्रत्यायनीय के मर्म को न जान कर अदृष्ट वादियों ने जो वेद का विध्वंस किया उससे ऋषिदयानन्द ने हमारा उद्धार किया धन्य हो दयानन्द ?

विनियोगवाद

अब वेदार्थ ज्ञान का तीसरा महाविघ्न विनियोगवाद हमारे सामने आता है। विनियोग किसको कहते हैं ? अन्यत्रोपात्तानां वाक्यानाम् यथास्थान-मुपयोगी विनियोगः जो वाक्य किसी एक ग्रन्थ के विशेष प्रकरण में पड़े हों।

उनको प्रसङ्गानुसार किसी वैसे ही प्रकरण में इस ढङ्ग से प्रयोग करना जिससे वे उस प्रसङ्ग में फब जावें, यही विनियोग कहलाता है। जैसे गीता का यह वाक्य 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।। अ० २ श्लोक २७ जो पैदा हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होगी जो मरा है उसका जन्म अवश्य होगा इसलिये अवश्यम्भावी बात पर तुम्हें शोक करना उचित नहीं।

यदि किसी उपदेशक द्वारा किसी ऐसे अवसर पर पढ़ दिया जाये जहां किसी जवान पुत्र की देश सेवा के कार्य में मृत्यु हो गई तो वह इसका ठीक विनियोग होगा।

परन्तु किसी कन्या के विवाह पर कन्या की विदाई के समय यह वाक्य पढ़ा जावे, तो इसका अनुचित उपयोग होगा। यह विनियोग नहीं दुर्नियोग होगा। अब किसी वाक्य का विनियोग हुआ है अथवा दुर्नियोग इसके निर्णय करने का उपाय यह है कि पहिले उस वाक्य का ठीक अर्थ जानकर पीछे विनियोग को देखना चाहिये कि विनियोज्य वाक्य का ठीक अर्थ के अनुकूल है या नहीं। किन्तु इसके ठीक विपरीत मध्यकाल के मीमांसकों ने विनियोग वाक्यों का अर्थ निश्चय करके वेद को उसके पीछे चलाया, उदाहरण के लिये मैं यजुर्वेद ३७ अध्याय १२ मंत्र को लेता हूं।

मन्त्र इस प्रकार है।

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः।
पुत्रवती दक्षिणात इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजाम्मे दाः ।।
सुषदा पश्चाद् देवस्य सवितुराधित्ये चक्षुर्मे दाः।
आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषम्मे दाः ।।
विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधित्ये ओजो मे दाः।
विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ।।

पति पत्नी की प्रशंसा में पत्नी से कहता है, हे पत्नि मेरा धर्म है कि मेरे रहते कोई तेरी ओर आंख न उठा सके और तुझे सदा उचित आदर से देखे इस प्रकार अनाधृष्टा तू अग्नि के राज्य में मुझे आयु देने वाली हो, मेरी दक्षिण दिशा में अर्थात् वीर्य्य शक्ति सम्पन्न होने की दशा में तू पुत्रवती होकर इन्द्र के राज्य में मुझे प्रजा देने वाली हो. उचित रूप से घर की देख रेख के लिए घर में बैठने वाली सुषदा होकर तू मेरे घर रूपी सवितृ मण्डल में मुझे आंख देने वाली हो। चारों ओर का ठीक ठीक गृह वृत्तान्त मुझे सुनाने वाली अतएव आश्रुति बन कर तू उत्तर दिशा में अर्थात् मेरे वामाङ्ग में धाता के राज्य में मेरी गृहलक्ष्मी की पोषक बन, मेरे सिर पर धारने योग्य विधृति अर्थात् छत्र रूप बनकर तू बृहस्पति के राज्य में अर्थात् मेरे मस्तिष्क में ओज भरने वाली बन। तू सब नाष्ट्रा अर्थात् व्यभिचारादि द्वारा हमारा जीवन नष्ट करने वाली दुराचारिणी स्त्रियों से मेरी रक्षा कर सो किस प्रकार ? कि—

मनोरश्वासि=अन्तःकरणस्य व्यापिका भवसि।

भावर्थ—तू मेरे मन में इस प्रकार व्याप जाती है कि किसी दुराचारिणी के लिए उसमें स्थान ही नहीं रहता।

यह इस मन्त्र का ऋषि दयानन्द कृत अर्थ है। कितना स्पष्ट कितना प्रकरणानुकूल कितनां युक्ति सङ्गत। मन्त्र में पड़ा हुआ पुत्रवती शब्द पुकार पुकार कर कह रहा है, कि इसमें पत्नी का वर्णन है इसका विनियोग पृथवी में हुआ है। सो इस में कुछ अयुक्त बात नहीं। विवाह संस्कार में पति पत्नी से कहता है "द्यौरहं पृथिवीस्त्वम्" हे पत्नी मैं द्यौ हूं तू पृथिवी है। यहां पति को बताने वाला द्यौः शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। इसका चमत्कार दिखाने का यहां

प्रसङ्ग नहीं वह यथास्थान दिखाया जायगा। किन्तु यहां पृथिवी कह कर वेद-वाणी ने स्पष्ट रूप से पत्नी का वर्णन किया है। अब यदि मूल के पुत्रवती शब्द के पीछे पृथ्वी को चलाकर इस मन्त्र का अर्थ समझा जाय तो वह कितना शिक्षाप्रद तथा उत्साह वर्धक गृहस्थाश्रम में हमारा दर्शन बनता है। वेद की महिमा इससे कितनी स्पष्ट दिखती है। परन्तु मध्यकालीन भाष्य-कारों ने वेद के पीछे विनियोग को न चलाकर विनियोग के पीछे वेद को चलाया है।

उनका व्यवहार ठीक इसी प्रकार है जैसे कोई तैय्यार कपड़ों की दूकान पर जाकर एक पाजामा मांगे। जब वह पहिन कर देखे तो पता लगे कि पाजामे की टांगे छोटी हैं तब बड़ी टांगों वाला पाजामा दिखाने के स्थान में दूकानदार ग्राहक से मांग करे कि कृपा कर के टांग कटा कर आजाइए पाजामा आपको पूरा आ जाएगा। विनियोग के पीछे मूल को चलाना, पजामे के पीछे टांग को कटाने के सदृश घोर अत्याचार तथा पराकाष्ठा की मूर्खता है। किन्तु इसी मूर्खता का साम्राज्य मध्यकालीन मीमांसकों के द्वारा किए गए भाष्यों में दीखता है। ऊपर वर्णित मन्त्र का महीधर भाष्य देखिए।

हे पृथिवी जो तू पूर्व दिशा में राक्षसों से अनाधृष्टा है, अग्नि के आधिपत्य में मुझे (यजमान को) आयु दे। जो तू दक्षिण दिशा में इन्द्र के आधिपत्य में पुत्रवती है सो तू मुझे संतान दे जो तू पश्चिम दिशा में सुषदा अर्थात् जिसमें सब भली प्रकार बैठे ऐसी है सो सविता देव के आधित्य में मुझे नेत्र दे। हे पृथिवी जो तू उत्तर दिशा में ब्रह्मा के आधिपत्य में आश्रुति है। अर्थात् ब्राह्मणों के वेद श्रवण से युक्त है, सो तू मुझे धन की पुष्टि दे। जो तू ऊपर की दिशा में बृहस्पति के आधिपत्य में विधृति है सो मुझे ओज दे।

हे महावीर पात्र के दक्षिण ओर की भूमि तू सब नाशकारक पिशाचादि से हमारी रक्षा कर, हे महावीर के उत्तर भाग की भूमि तू राजा मनु की घोड़ी है।

इसी प्रकार पशुयाग में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनका ऊट पटांग अर्थ इस लिए किया गया कि इनका विनियोग पशु संज्ञपन में है, अब यदि मूल मन्त्र के पीछे विनियोग को चलाते तो इन भाष्यकारों को पशु शब्द का भी ठीक अर्थ ज्ञात हो जाता और सज्ञपन का भी, परन्तु इन विनियोग के दास मन्दमति लोगों ने पशु और संज्ञपन दोनों शब्दों के साथ जो लीला की है। उस पर रोयें अथवा हंसें यह कहना कठिन है। हंसी इस लिए आती है कि यह अर्थ बिल्कुल असम्भव है। पशु के माता पिता से अनुमति मांगना फिर उनका अपने बच्चे को मारने की अनुमति देना। फिर मरे हुए बच्चे की वाक् प्राण आदि को शुद्धि सब ही नितान्त असम्भव है। उधर रोना इस लिए आता है कि इन जड़मति लोगों ने वेद जैसे अमूल्य निधि को सारे संसार का उपहास पात्र बना डाला है। प्रथम तो संज्ञपन शब्द का मारना अर्थ सम्भव ही नहीं और यदि कदाचित् व्याकरण द्वारा यह उपपन्न भी हो सकता हो तो सम्यग् ज्ञान देना इस प्रसिद्धार्थ को छोड़कर प्रकरण विरुद्ध असम्भव अर्थ को मन्त्रों पर क्यों लादा जाय यह बिल्कुल नहीं समझ में आता। संज्ञपन शब्द के अर्थ का निर्णय करने में निम्न बातें विचारणीय हैं।

संज्ञपन का अर्थ मारना करने में मरे हुए पशु को यज्ञ में डालना पड़ेगा किन्तु शतपथ स्पष्ट करता है कि—

जीवमेव देवानां हविरमृतममृतानाम्

शत. ३. ८. २. ४

देव लोग जीवित है मुर्दे नहीं हैं इसलिये उनकी हवि भी सजीव ही हो सकती है मुर्दा नहीं।

इसलिए स्पष्ट है कि पशुयाग में जो मन्त्र दिये गये हैं वे जीवित पशु के ही अंगों में प्राण संचार करने वाले हैं, न कि मुर्दे के, और यह आहुति जीवन काल में ही दी जाती है। यत: प्राण संचार से पशु के अंग और भी सजीव हो उठते हैं।

कहा जा सकता है कि पशुयाग में जो पशु अङ्ग-अङ्ग विभक्त करने का वर्णन है सो यह भी जीवित का ही होना चाहिये। क्यों कि शतपथ ने स्पष्ट कह दिया है, जीव वै देवानां हवि: जिंदा देवताओं की हवि जिंदा ही हो सकती है मुर्दा नहीं।

अब प्रश्न यह होगा कि क्या यह भी सम्भव है पशु जिंदा भी रहे और उसके अङ्ग अङ्ग विभक्त हो जावें ? तो इसका उत्तर हां में है। इस गोरखधन्धे को सुलझाने से पहिले हम पशु शब्द का अर्थ खोलकर दिखलाना चाहते हैं। पशु का अर्थ है बालक । क्योंकि बालक में मनन शक्ति पीछे प्रादुर्भूत होती है, आरम्भ में उसका जीवन निसर्ग बुद्धि (Instinct) से चलता हैं पशु जीवन भर (Instinct) निसर्ग बुद्धि से ही दीखते हैं किंतु मनुष्य मनन शक्ति की औलाद है उसकी मनन शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है सो वह पशु (पश्यतीति पशु:,) इस अवस्था से निकल कर मनु होता जाता है।

अर्थव वेद मे मन्त्र आया है—

वितिष्टन्ताम् मातुरस्या उपस्थात् नानारूपा: पशवो जायमाना

अथर्व का. १४. अनु. २. मन्त्र २६.

इस मन्त्र में नववधू के स्वागत में आशीर्वाद दिया गया है कि इस माता की गोद से पशु जन्म ले उन्हें प्रतिष्टा लाभ हो।

इस मन्त्र के अनुवाद में ग्रिफिथ जैसे कट्टर पन्थी को भी पशु का अर्थ babies करना पड़ा है। यजुर्वेद में भी लिखा है ।

देवा यद् यज्ञम् तनवाना अबध्नन् पुरुषम् पशुम् ।

यजु ३१. ५१

विद्वान् जो पवित्र यज्ञ करते हैं उसमें पुरुष पशु को बांधते हैं। यह तो हुई पुरुष सामान्य की बात अब जो घोड़ा गधा आदि पशुओं के नाम आते हैं वे ब्राह्मण क्षत्रियादि गुण वाले पुरुषों के नाम हैं। देखिए—

क्षत्रं वा अन्त्रश्वो वैश्यं च शूद्रं चतुरासभो ब्राह्मणमजः

शत ६. ४. ४. १४

घोड़ा क्षत्रिय के अनुकूल गुण वाला है वैश्य शूद्र गधे के और ब्राह्मण बकरे के गुण वाला।

सो जो छाग अर्थात् बकरी का बच्चा है यह गुरुकुल में प्रवेशार्थी छोटे बालक का नाम है। क्योंकि वह ऐसा नम्र तथा भोला भाला है। इसी लिए अंग्रेजी भाषा में भी Innocent as alamb यही उपमा दी जाती है।

इस बालक को जब व्यायान की शिक्षा दी जाती है तो उसका एक एक अङ्ग अलग दिखने लगता है और वह जिंदा भी रहता है इस प्रकार का बालक ही देवताओं की हवि होता है अर्थात् राष्ट्र के जिस विभाग के लिए उसे तैयार करना हो उसके लिये उपयोगी होता है बेडौल शरीर वाला अर्थात् चर्बी से लदा हुआ अथवा अस्ति पञ्जर मात्र बालक यज्ञ अर्थात संगठन के किसी कामका नहीं उसकी चर्बी पेट से कटकर व्यायाम द्वारा जगी हुई प्राण शक्ति द्वारा जहां उसकी आवश्यकता है वहीं पहुंचनी चाहिये यही चर्बी के हवन का भाव है इस प्रसंग में कालीदास का यह श्लोक लीजिये।

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रम् सूर्यांशुभिन्नमिवारविन्दम्
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन

कुमारसम्भवः १. ३१

कालिदास पार्वती के शैशव से यौवन में प्रवेश का वर्णन कर रहे हैं।

जिस प्रकार चित्रकार की तूलिका चित्र में एक एक अङ्ग को विभाग करके अलग अलग दिखा देती है, जिस प्रकार सूर्य की किरणों से कमल की पंखड़ी खिल जाती है उसी प्रकार नवयौवन ने पार्वती के अङ्ग अङ्ग का विभाग करके उसे सुन्दर बना दिया। अब यहां क्या आप यह अर्थ करेंगे कि नवयौवन ने छुरी लेकर पार्वती के अङ्ग अङ्ग काट डाले। इसी प्रकार कालिदास का एक श्लोक और लीजिये मृगया की प्रशंसार्थ अभिज्ञान शाकुन्तला में वे लिखते हैं कि—

"मेदश्छेद कृशोदरं लघु भवत्युत्थान योग्यं वपुः"। अर्थात् मृगया से चर्बी कट जाती है और शरीर हलका और फुर्तीला बन जाता है। अब यहां क्या यह अर्थ किया जायगा, कि मृगया छुरी लेकर पेट की चर्बी काट डालती है, कदाचित् नहीं, तो चर्बी जाती कहां है, अग्नि के अर्पण हो जाती है, किसी डाक्टर से पूछ लीजिये वे आपको बता देंगे, कि व्यायाम से चर्बी ईंधन के समान जल कर छंट जाती है। यही चर्बी की अग्नि में आहुति है।

जब तक शतपथ का "जीव मेव देवानां हविः" जिन्दा ही देवताओं का हवि हो सकता है मुर्दा नहीं, यह वाक्य विद्यमान् है तब तक करोड़ों पण्डित भी इकट्ठे होकर यज्ञ में पशु हिंसा सिद्ध नही कर सकते।

इसके अतिरिक्त सारे वैदिक वाङ्मय में पशु याग वादि एक स्थान पर भी "पशुम मारयन्ति अथवा प्राणैर्वियोजयन्ति ऐसा वाक्य नहीं दिखा सकते। हां इसका उल्टा तो अवश्य उपस्थित है।

तन्नाह जहि मारयेति मानुषं हि तत् संज्ञपयान्वगनित तद्धि देवत्रा स यदाहान्वगन्निति एतर्हि एष देवाननु गच्छति तस्मादाहान्वगन्निति ॥

।।शत० ३८।२।१४।।

पशु के संज्ञपन काल में जहि, मारय, यह शब्द नहीं कहे जाते क्योंकि यह मनुष्यों का व्यवहार है। उस समय शब्द बोले जाते हैं संज्ञपन, अन्वगन् क्योंकि संज्ञपन के द्वारा यह देवों का अनुगामी बन जाता है। इसी लिये कहा अन्वगन्।

यह सचमुच बड़ी विचित्र बात है कि पशुयाग में संज्ञपन और आलम्भन शब्दों का ही व्यवहार होता है, मारण का कहीं नहीं। इसका कारण अवश्य विचारना चाहिये। बात स्पष्ट है पशुयागवादियों की यह तो हिम्मत नहीं हुई, कि वे नये ग्रन्थ बना डालें उन्होंने वैदिक साहित्य के शब्दों के ही अर्थ बदल डालें। उदाहरण के लिये हम इस लेख में संज्ञपन शब्द को लेंगे। यह संज्ञपन शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक ज्ञा धातु से णिच् प्रत्यय और उसके पश्चात् ल्युट् प्रत्यय करने से बना है।

इसमें पहिले सम् + ज्ञा का अर्थ देखते हैं। इसका अर्थ है भली प्रकार जानना और पहिचानना, चारों वेदों में यह शब्द और किसी अर्थ में नहीं आया, इसका निम्न उदाहरण पर्याप्त होगा।

संगच्छध्वं संवदध्वम् संवो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥

॥ऋ० १० १९१।२॥

ऐ मनुष्यो! तुम संगठित होकर चलो परस्पर सम्वांद (Harmony) से चलो। तुम्हारे मन परस्पर एक दूसरे को समझते हों तुम्हारे अन्दर (Perfect mutual understanding) हो। जिस प्रकार तुम्हारे पूर्व विद्वान् लोग अपने अपने कार्य भाग की उपासना परस्पर संज्ञान पूर्वक करते आये हैं।

मन्त्र का अर्थ इतना निर्विवाद है कि इसमें टिप्पणी की आवश्यकता ही नहीं। इस अर्थ में सब सहमत हैं।

अब संज्ञपित को लीजिये । यह संज्ञा का हेतुमद्भाव का रूप है । इसका अर्थ हुआ सम्यक् ज्ञान अथवा भली प्रकार परिचय कराना । फलतः उत्तम शिक्षा देना । इसी से संज्ञपन शब्द बना ।

अब इस संज्ञप्ति का प्रयोग भी देखिये । मनवाणी के झगड़े में वाणी कहती है, कि हे मन मैं तुझसे बड़ी हूं । इसके लिये वाणी यह युक्ति देती है ।

अथह वागुवाच अहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मि यद्वै त्वँ वेत्थ अहं तद् विज्ञपयामि अहं सँज्ञपयामीति ।।

।।शत० १/५/७/१०।।

इस पर वाणी बोली । मैं ही तुझसे बडी हूं । क्योंकि जो कुछ तू जानता है उसे मैं ही विज्ञापन करती हूं । मैं समझाती हूं । यहां सायण भाष्य (तथा कथित) में भी सम्यक् प्रतिपादयामि यही अर्थ किया गया है ।

यह प्रसंग प्रथम काण्ड का है । पशुयाग वादियों का प्रसंग तीसरे काण्ड में है । पता नहीं लगता कि जिस शब्द का अर्थ प्रथम कांड में सम्यक् ज्ञान देना है उसका अर्थ तीसरे काण्ड में मारना किस प्रकार हो गया ।

कहा जा सकता है कि एक शब्द के दो अर्थ हैं, सो प्रकरण के बल से वहां ऐसा अर्थ कर दिया गया होगा सो प्रथम तो इस शब्द का दूसरा अर्थ जबरदस्ती के बिना किया ही नहीं जा सकता । परन्तु यदि दुर्जनतोष न्याय से इसके दो अर्थ मान भी लिए जावें, तो अब देखना चाहियें कि प्रकरण क्या कहता है ?

पशुयाग वादियों के मतानुसार

बकरी के बच्चे को जब संज्ञपन अर्थात् मारने के लिए ले जाते हैं तो उसे फांसी लगाकर मारते हैं, उस समय मन्त्र पढ़ते हैं– "ऋतस्यत्वा देव हविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि" (यजु० ८/६ अर्थात् हे देवताओं की हविः तुझे हम ज्ञान के पाश से बांधते हैं । यह गला घोटना खूब ज्ञान का पास हुआ । अब

कहिये प्रकरणानुसार सम्यक् ज्ञान देना अर्थ हुआ अथवा गला घोटना फिर मन्त्र पढ़ते हैं—

अनुत्वा माता मन्यतामनुपितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्य:

यजु० ६/६।।

हम अब तुझे मारेंगें अब तेरे माता पिता सहोदर भाई और टोली के मित्र सब इस शुभकार्य में अनुमति दें।

भला विचारिये कि पहले तो बकरी के बच्चे का उस प्रकरण में कहीं वर्णन नहीं, फिर यदि यहां छाग मान भी लें तो यह वर्णन छाग के समान विनीत बालक का हुआ, जो ब्राह्मण गुण वाला है। भला बकरी के बच्चे के माता पिता आदि का प्रथम तो पता ही किस प्रकार लगेगा ? फिर वे अनुमति किस प्रकार देगें, फिर यदि उनमें अनुमति देने की शक्ति होती, तव वे तो यजमान को ही स्वर्ग पहुचाने को कहेंगे अपने बच्चे को नही।

आगे चलिये। यजभान की पत्नी मरे हुए बकरे के अंग स्पर्श करके मन्त्र पढ़ती है।

वचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्रांस्तेशुन्धामि।

।।यजु० ६/१४।।

हे बकरी के बच्चे मैं तेरी वाणी को शुद्ध करती हूं, प्राण को शुद्ध करती हूं। चक्षु को शुद्ध करती हूं कान को शुद्ध करती हूं, नाभि को शुद्ध करती हूं, उपस्थेन्द्रिय को शुद्ध करती हूं गुदा को शुद्ध करती हूं तेरे चरित्रों को शुद्ध करती हूं। भला यह चरित्र शुद्धि तो जीवित बकरे की भी असम्भव है मरे की तो कहना ही क्या ?

फिर अगले मन्त्र में मरे बकरे को आशीर्वाद देते हैं—

वाक् त आप्यायताम् प्राणस्त आप्यायताम् चक्षुस्त अप्यायताम् श्रोत्रत अप्यायाताम्।

अजु० ६/१६

हे मरे हुए बकरे तेरी वाणी फले फूले तेरा प्राण फले फुले तेरे चक्षु फले फुलें, तेरे कान फलें फुलें।

(शमहोभ्यः) तेरे दिन सुख शान्ति से बीतें। अब यदि-संज्ञपन के दो अर्थ भी मान लें तो देखिये कि प्रकरण में सङ्गत अर्थ कौन सा है।

संज्ञपन का अर्थ विद्यादान मानने से अर्थ यों हुआ, हे विनीत बालक आज घर से गुरुकुल के लिये विदाई देते समय हम तुझे ज्ञान के पाश से बांधते हैं, माता पिता सहोदर भाई टोली के साथी सब तुझे प्रसन्न होकर गुरुकुल के लिये विदा करें। गुरुपत्नी कहती है मैं तेरी वाणी को शुद्ध करती हूं, तेरे प्राण शुद्ध करती हूं, तेरे नेत्र शुद्ध करती हूं, नाभि शुद्ध करती हूं, कान शुद्ध करती हूं, लिंग शुद्ध करती हूं, गुदा शुद्ध करती हूं, अतः इन सब इन्द्रियों की शुद्धता तथा सदुपयोग सिखाकर मैं तेरा चरित्र शुद्ध करती हूं। फिर स्नातक होने के समय उसे आशीर्वाद दिया जाता है तेरी वाणी फले फूले, तेरे प्राण फलें फूलें, तेरे कान फलें फूलें, तेरे नेत्र फलें फूलें, तेरे दिन सुख से बीतें।

अब एक ऐतरेय ब्राह्मण का भी प्रमाण लीजिए—

ता भृगुरपश्यदापो वै स्पर्धन्त इति। ता एतयर्चा समज्ञपयत्।

॥ ऐतरेय ८ अध्याय २ खण्ड ॥

वसतीवरी और धना नाम की दो आपः में झगड़ा हो गया। इस झगड़े को भृगुऋषि ने देखा सो उसने उन्हें आपस में एक मत कर दिया। यहां स्वयं सायण ने भी झख मार कर समज्ञपयत् का अर्थ संज्ञानम् परस्पर मैकमत्यम् प्रापयत् इस प्रकार किया है। फिर पशु के सम्बन्ध में इसका अर्थ किस प्रकार बदल गया।

इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट है, कि इस शब्द का अर्थ षड़यन्त्र द्वारा जान बूझ कर बिगाड़ा गया है।

अब यह स्पष्ट हो गया, कि इस विनियोग वाद ने वेद की कैसी दुर्दशा की है। इन तीन वेद विघातक वादों अर्थात् (१) विकास वाद (२) अदृष्ट वाद (३) विनियोग वाद से ऋषि दयानन्द ने वेद को मुक्त करके सारे संसार के लिए मोक्ष का रास्ता खोल दिया। क्योंकि जब संसार के मोक्ष का उपाय बताने वाला वेद ही स्वयं दास बन गया था तो संसार का मोक्ष किस प्रकार हो सकता था ?

यहां तक हमने वेद विघातक तीन वादों का वर्णन किया। अब हम ऋषि दयानन्द की वेद भाष्य प्रणाली के आधारभूत तीन वादों का वर्णन आरम्भ करते हैं। वे तीन वाद निम्नलिखित हैं:

(१) यौगिक वाद (२) समकक्ष वाद (३) विज्ञाताश्रय वाद।

यौगिकवाद

सब से पहले यौगिक वाद को लीजिए। वेद के शब्दों का अर्थ लौकिक शब्दों की अपेक्षा व्यापक है। यह सब को माना ही पड़ता है, यदि ऐसा न मानें तो :—

अश्वा भवत वाजिनः गावो भवत वाजिनीः

अथर्व १–४–४

यहां वाजि और वाजिनी शब्द का क्या अर्थ करेंगे ?
घोड़े घोड़े हो जावें और गौवें घोड़ी हो जावें ! कदापि नहीं।

यहां सायण को भीं वाज इति बलनाम यह निरुक्त प्रमाण दे कर अश्वाः बलयुक्ता भवथ और गावः प्रभूत क्षीरा भवथः ऐसा अर्थ करना पड़ा। यदि अश्वादि शब्दों का रूढ़ अर्थ लेंगे तो।

आविद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः

ऋ० १–८८–१

अश्व पर्ण शब्द जो रथ का विशेषण है सो कैसे बनेगा।

अश्वा: अशु गामिन: पर्णा येषाम् ऐसा अर्थ करना ही पड़ेगा सो अश्व का अर्थ यहां शीघ्र गामी के अतिरिक्त क्या होगा।

इसी प्रकार यदि कण्वादि नाम वेद में व्यक्ति विशेष में रूढ़ हों तो उनमें तमप् प्रत्यय नहीं लग सकता क्या दुनिया में कभी देवदत्त देवदत्ततर तथा देवदत्ततम अथवा Napolian, Napolianer, Napolianest का प्रयोग भी देखने में आता है ? कभी नहीं ! किन्तु ऋग्वेद १–३१–२ में त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तम: ऐसा प्रयाग है और इस प्रकार का प्रयोग ११ स्थलों पर देखने मे आता है।

ऋग्वेद १. ४८. ४ में कण्वतमो नृणाम् यह प्रयोग है जिसका अर्थ मनुष्यों में मेधावितम इस प्रकार करन पड़ता है इसी प्रकार ऋग्वेद १०।१५५।५ में अग्नि: कण्वतम: कण्वसखा ऐसा पाठ है जिसका अर्थ बुद्धिमानो का मित्र तथा सबसे बड़ा बुद्धिमान ऐसा करना पड़ता है।

यह यौगिकवाद ऋषि दयानन्द ने चलाया हो सो ही बात नहीं इस विषय में सायण की लीला भी देखिये।

उच्छन्त्याँ मे यजता देवक्षत्रेरुशद् भुवि सुतं सोमं न हस्तिभिराड्भिर्धावतम् नरा बिभ्रता वर्चनानसम्।

यहां सायण ने हस्तिभि: का अर्थ किया है अश्वै: सो किस प्रकार वह भी देखिये इदानीं हस्तिभि: हस्तिवद्भि इन्तेर्गति कर्मणो हस्त शब्द: गमन साधन पादवद्भिरित्यर्थ: पद्भि: पादचतुष्टयोपतैरश्वै:। अर्थात् गमन क्रिया का साधन होने से हस्त नाम पाद का हुआ इस लिये हस्ती का अर्थ पैर वाले घोड़े इस प्रकार हुआ। अच्छा ! फिर आगे पड़े हुये पड्भि: का क्या बनेगा यह सायण

ही जाने, इस प्रकार सायण यदि हाथी का घोड़ा बना दे तो उस पर खेंचा तानी का दोष नहीं लगाता। बात तो इतनी है कि इस सूक्त का विनियोग अश्विदेवता की स्तुति में है। बलिहारी है विनियोग की।

अब हम यौगिकवाद पर होने वाले एक आक्षेप का भी समाधान कर देना चाहते हैं लोगों का प्रश्न है कि यदि गच्छतीति गौः अर्थात् जो चले उसका नाम गौ, ऐसा माना जाय तो लट्टू, घड़ी,, नदी, घोड़ा, खच्चर रेल गाड़ी, मोटर, बाईसिकिल, सबका नाम गौ होना चाहिये ! नहीं ? यह ठीक नहीं ! यौगिकवाद का यह ततापर्य कदापि नहीं ।

किसी शब्द का यौगिक अर्थ जानने का प्रकार यह है कि वेद में वह कहां कहां किस किस प्रकरण में प्रयुक्त हुआ है यह देखकर ऐसा अर्थ ढूंढ़ निकालना जो उन सब अर्थों का अपने अन्दर समावेश करता हो। जैसे गौ शब्द वेद में धरती, वाणी, इन्द्रिय, स्त्री तथा गाय इन अर्थों में आया है। तो गौ का अर्थ हुआ प्रिय वस्तु को उत्पन्न करने के लिए गति करना। गाय दूध को उत्पन्न करने के लिये विचरती है स्त्री संतान को, इन्द्रियें ज्ञान अथवा विषय सुख को वाणी अर्थ को. धरती अन्न को, इसी प्रकार ऋ धातु को ले लीजिये यद्यपि व्याकरण में ऋगतौ इस प्रकार अर्थ दिया है। परन्तु ऋ धातु का अर्थ जानने के लिये इसके प्रयोगों को देखना होगा। ऋ धातु से ऋतु शब्द बना है जिसका अर्थ है शीतोष्णादि अवस्था विशेष के लिए नियत काल। ऋत का अर्थ है सत्य अर्थात् अन्यूनानतिरिक्त यथार्थ ज्ञान। जिसका उल्टा अनृत न्यून अथवा अतिरिक्त ज्ञान हुआ इससे ऋ धातु का अर्थ है परिमित। गति यह आशय वेद में स्वयम् अत्यन्त स्पष्ट कर दिया गया है। मन्त्र इस प्रकार है—

तेनो अर्वन्तो हवन श्रुतो हव विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रव:

वे हमारी आवाज सुन कर इशारे पर चलने वाले मितद्र अर्वा हमारी बात सुने यहां अर्वन्तः के अर्थ को मितद्रवः ने बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। वे

इतने सधे हुए घोड़े हैं कि दौड़ने के समय द्रुत गति में भी नाप के साथ चलते हैं।

इन्हीं अर्थात् सधे हुए घोड़ों के कारण आर्यों ने अरब देश का नाम अरब रक्खा। अरबी भाषा में इस अर्व नाम का कुछ अर्थ ज्ञात नहीं, क्योंकि यह शब्द संस्कृत भाषा का है और इस देश का नाम आर्य भाषा भाषी लोगों ने ही रक्खा आज भी इस के घोड़े through bried के नाम से पुकारे जाते हैं।

इसी ऋ धातु से अर्य्य शब्द बना है जिसक अर्थ पाणिनि के अनुसार स्वामी अथवा वैश्य है (अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः अ. ३ पा. १सू. १०३ इस शब्द को देखकर पाश्चात्य विद्वानों मे खूब धांधली मचाई है। उनका कहना है कि ऋ धातु से अर्य्य शब्द बना। वैश्य का काम कृषि गोरक्षा वाणिज्य है, इस लिए ऋ धातु का अर्थ है खेती करना इसकी पुष्टि वे अंग्रेजी भाषा के arrable land अर्थात् खेती योग्य भूमि इस शब्द से करते हैं। किंतु यह उनकी भूल है वैश्य अर्थ इसलिए कहलाता है कि उसके साथ हर बात नाप तोल में की जाती है। आप मां के साथ मचल सकते हैं मां लड्डु खायेंगे हो सकता है मां आप के हाथ में ताली दे दे जा जितने जी में आए खाले परन्तु हलवाई से आप मचल नहीं सकते जहां आपने कहा कि आज लड्डु खायेंगे और उसने तराजू पकड़ी कि बोलो कितने तोलू सो अर्य्य का अर्थ हुआ मित्या प्राप्तव्यः। जिसके साथ नाप तोल में ही बात की जाय, स्वामी भी अर्य्य इसीलिये कहलाता है क्योंकि वह सेवक के काम को नाप तोल कर उसके अनुसार वेतन देता है अंग्रेजी भाषा में जो खेती के योग्य भूमि को arrable कहते हैं वह भी इसलिए कि उसे ठीक ठीक नापना पड़ता है निरुक्त में लिखा है "अर्य्यः ईश्वर पुत्र": अर्थात् अर्य का अर्थ है सबसे बड़े स्वामी परमात्मा का पुत्र अर्थात जिस प्रकार परमात्मा का हर कार्य याथातथ्य पर अवलम्बित है (याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः) यजु. अ. ४० मं.८ जो उसके गुण कर्म स्वाभाव अपने अन्दर धारण करे अर्थात् जिसका

पूर्णतया नपा तुला जीवन हो वही आर्य है इस शब्द को एक जाति वाची शब्द मान कर योरोपियन लोगों ने जो बवण्डर खड़ा किया है वह आज दक्षिण देश में अपने रंग दिखा रहा है दुःख तो यह है कि पण्डित जवाहर लाल सरीखे सच्चे देश भक्त तथा पुरुष भी इस क्षेत्र में योरोपियन धूर्तों के चक्र में फंस कर इतने अन्धे हुए हैं कि इस भूल को नहीं सुधारते आपने देखा कि एक शब्द के साथ किया गया अत्याचार कैसे कैसे गुल खिलाता है। सो वेद के शब्द यौगिक हैं और यौगिकवाद का अर्थ अन्धाधुन्धवाद नहीं किंतु सर्वार्थ समावेशवाद है।

इस विषय में ऋषि दयानन्द का पक्ष सत्य की चट्टान पर खड़ा है और वह समय दूर नहीं है जब विदेशी धूर्तों के जहाज इस चट्टान से टकरा कर अवश्य चकनाचूर होंगे। हो सकता है कि मेरे धूर्त शब्द पर कई लोग आपत्ति करें किन्तु पण्डित गुरुदत्त जी आदि विद्वानों द्वारा सत्यज्ञान कराये जाने पर भी जिन्होंने राजनैतिक स्वार्थवश आर्य द्रविड़ का झगड़ा करने के लिये आर्य जैसे पवित्र शब्द की मट्टी पलीद की उन्हें धूर्त न कहूं तो फिर क्या कहूं ? परमात्मा हमारे देश के इतिहासविदाभासों का इनके चंगुल से कब उद्धार करेगा ?

समकक्षवाद

अब यौगिकवाद के साथ ही लगे हुये हम एक और वाद की ओर आते हैं यह है समकक्षवाद। उपनिषत् में कहा है—"अनन्ता वै वेदाः" स्कन्द आदि भाष्यकारों ने भी आधिभौतिक आधिदैविक आध्यात्मिक तीन अर्थ मन्त्रों के बताये हैं। वस्तुतः यह तीन ही क्यों, वेद के एक ही मन्त्र के अनन्त अर्थ हो सकते हैं। परन्तु इन सब अर्थों में एक व्यवस्था काम कर रही है। "सच पूछिये तो पुरुष सूक्त वेद की कुञ्जी है। इस ब्रह्माण्ड में जो सूर्य चन्द्रादि देव हैं

उनकी कल्पना मनुष्य शरीर में करके फिर उनका प्रतिनिधि मानव समाज में ढूंढना यही पुरुष सूक्त का सार है। भाव यह है कि इस संसार में जितने भी प्रकार के यंत्र विज्ञान द्वारा बनाये जा सकते हैं वे सब मनुष्य की किसी न किसी इन्द्रिय की सहायता के लिये हो तो हैं उन यन्त्रों में प्राण, चिन्तन, मननादि शक्तियें नहीं हैं, इसलिये वे मनुष्य से कुछ कम ही काम करेंगी अधिक नहीं कर सकती हां मात्रा में वे मनुष्य शक्ति को बहुगुणित कर सकती हैं सो हम जिस विद्या की भी खोज करना चाहें उसे एक पुरुष कल्पना करके पुरुष के अंग उसमें खोज द्वारा उत्पन्न कर दिये जावें। सो अग्नि सोमादि जो देवता ब्रह्माण्ड में हैं वे ही मनुष्य शरीर में हैं। उन्हीं को हमें सर्वत्र उत्पन्न कर देना है। उदाहरण के लिये मैं अग्नि तथा सोम को लेता हूं। शतपथ में लिखा है :—

द्वयं वा इदं तृतीयमस्ति आर्द्रंचैव शुष्कञ्च यच्छुष्कं तदाग्नेयम् यदार्द्रं तत् सौम्यम् ॥

॥ शत० १।६।२।२३ ॥

फिर अगली काण्डिका में लिखा है—

सूर्य्यएवाग्नेयः चन्द्रमाः सौम्योऽहरेवाग्नेयं रात्रिः सौम्या।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्माण्ड में सूर्य के उदय होने पर शुष्कता आती है वह आग्नेय है। चन्द्रोदय पर ओस पड़ती है आर्द्रत्ता आती है वह सौम्य है। जहां शुष्कता है वहां अग्नि है। जहां आर्द्रता है वहां सोम है। बस यह ब्रह्माण्ड आर्द्र तथा शुष्क इन दो में बंटा हुआ है। तीसरा नहीं। अब रोटी में आटा आग्नेय है। जल व घृत सोम्य है। शरीर में पित्त आग्नेय है। कफ सौम्य

है। इसी लिये सुश्रुत में मानव शरीर को अग्नीषोमीय कहा है। ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय ६ खण्ड ३ में।

नाग्नीषोमीयस्य पशोरश्नीयात् पुरुषस्य वा एषोऽश्रातियोऽग्नीषोमीस्य पशोरश्नाति ।।

इसी प्रकार चरक शरीर स्थान पञ्चाध्याय का आरम्भ इस प्रकार होता है।

पुरुषोऽयं लोक सम्मितः। तस्य पुरुषस्य पृथिवी मूर्त्तिः आपः क्लेदः तेजोऽभिसन्तापः वायुः प्राणः वियत्सुषिराणि, ब्रह्मान्तरात्मा, यथा खलु ब्राह्मी विभूतिर्लोके तथा पुरुषेऽन्तरात्मनो विभूतिः ब्रह्मणो विभूतिर्लोके प्रजापतिरन्तरात्मनो विभूतिः पुरुषे सत्वम्। यस्त्विन्द्रो लोके स पुरुषेऽहङ्कारः आदित्यस्त्वादानम् सोमः प्रसादः।

इसी प्रकार सूत्र स्थान अध्याय ६ में लिखा है—

विसर्गः सोम्यः आदानम् पुनराग्नेयम् ।।

इस प्रकार हमने देखा कि दिन रात सूर्य चन्द्र ग्रीष्म वर्षा, कफ, पित्त इन सब को अग्नि तथा सोम कहा गया है। किन्तु इसमें इतना स्पष्ट है कि एक क्षेत्र में अग्नि का एक ही अर्थ होगा और उस पर यह नियम लागू होगा कि—

यदेव शुष्कम् तदाग्नेयम् यदार्द्रम् तत् सोम्यम् ।।

इस प्रकार लोक में अग्नि अग्नि है, जल सोम है आकाश में सूर्य अग्नि है, चन्द्र सोम है, यह नहीं कि आकाश में चन्द्र का नाम अग्नि हो जाय शरीर में पित्त अग्नि है तो कफ सोम है। हम शुष्कम् और आर्द्रम् के नियमानुसार

जब किसी एक क्षेत्र में अग्नि और सोम का अर्थ पता लगा लें तो दूसरे हर क्षेत्र में उनके समकक्ष अग्नि और सोम कहलावेंगे। इसका नाम समकक्षवाद है इस प्रकार हम यदि वेद के किसी एक क्षेत्र के अर्थ ठीक ठीक जान लें तो हर क्षेत्र में उन शब्दों का अर्थ जानना सुगम हो जायेगा। इस बात को हम मानचित्र के दृष्टान्त से भली प्रकार समझ सकते है। हम एक मानचित्र के छोटे बड़े अनेक मानचित्र बना सकते हैं परन्तु उनमें कलकत्ते और दिल्ली की दूरी का अनुमान सदा एक रहेगा।

समकक्षवाद का एक सुन्दर उदाहरण शतपथ ब्राह्मण में क्रतु दक्ष शब्दों की व्याख्या में मिलता है—

क्रतूदक्षौ हैवास्य मित्रा वरुणौ एतन्न्वध्यात्मं सयदेव मनसा कामयत इदं में स्यादिदं कुर्वीयेति स एव 'क्रतुरथ यदस्मै तत् समृध्यते सदक्षो मित्र एवक्रतुर्वरुणो दक्षो ब्रह्मैव मित्रः क्षत्रं वरुणोऽभिगन्तैव ब्रह्म कर्त्ता क्षत्रियः ॥।

॥ शत० ४।१।४।१॥

क्रतु और दक्ष का अर्थ है मित्र और वरुण। अपने अन्दर देखने पर इनका अर्थ होगा कि जो मन में सोचता है मुझे यह प्राप्त हो उसके लिये मैं यह करूं वह क्रतु है और जब उसका वह संकल्प फल समृद्ध होता है तब वह दक्ष कहलाता है (दक्ष समृद्धौ) मित्र क्रतु दक्ष वरुण है। ब्राह्मण मित्र है क्षत्रिय वरुण है क्योंकि मार्गदर्शक विधान बनाने वाला ब्राह्मण है जो आगे चलता है वह ब्रह्म है। उस कार्य को करने वाला क्षत्रिय है।

इन्हीं मित्र वरुण को प्रथम काण्ड में—

"प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ"

॥ शत० १ । ६ । ३ । १२ ॥

इस प्रकार आधिदैवत पक्ष में जो प्राण उदान हैं वही अधिराष्ट्र अर्थ में मित्र तथा वरुण है। वही अध्यात्म क्षेत्र में संकल्प तथा प्रयत्न हैं। इन तीनो क्षेत्रों में इनका नाम ऋतुदक्ष अथवा मित्र वरुण है। सो मित्र तथा वरुण एक क्षेत्र में एक ही हैं किन्तु क्षेत्र भेद से वह संकल्प तथा प्रयत्न। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय। प्राण तथा उदान तीनों है। हां उनमें समकक्ष भाव है एक अभिगन्ता है दूसरा कर्त्ता।

इसी प्रकार छान्दोग्य द्वितीयाध्याय दशम से इक्कीसवें खण्ड तक हिङ्कार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन इन पांच संगीत के अंगों को भिन्न भिन्न क्षेत्रों में समकक्षवाद के आधार पर दिखाया गया है।

संगीत के आरम्भ में जो राग का मन ही मन में आवाहन किया जाता है गुनगुनाया जाता है वह हिङ्कार है। राग की स्थायी प्रस्ताव है, तान अलाप का फैलाव उद्गीथ है, धीरे धीरे समाप्ति की ओर मुड़ने के लिये उतार का नाम प्रतिहार है, और सुन्दर समाप्ति का नाम निधन है। यह पांच अंग मानसिक क्षेत्र में अग्नि प्रज्वालन, स्त्री सहवास, सूर्योदय, मेघ वृष्टि, ऋतुपरिवर्तन, द्यौः पृथिवी, पशुमण्डल शरीर रचना, चन्द्रोदय, अग्नि, वायु, आदित्यादि देव मण्डल इन ११ क्षेत्रों में दिखाया गया है। इन प्रकरणों से समकक्षवाद बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। वेद में जो अनन्त विद्या भरी है उसका यही रहस्य है। हम यदि समाजशास्त्र में अग्नि सोम इन्द्र आदि के अर्थ टीक ठीक जान लें। तो यन्त्र विद्या में उनके समकक्ष क्या हैं। यह जानकर यन्त्र विद्या

भी उन्हीं मन्त्रों द्वारा मानी जा सकती है। यह बात यौगिक वाद के सहारे ही खड़ी रह सकती है। यदि हम जान लें कि, अग्नि का अर्थ अग्रणी है, तब तो यह सब अर्थ ठीक समझे जा सकते हैं, परन्तु यदि हम अग्नि का रूढ़ अर्थ अङ्गारों से जलने वाली अग्नि लेलें तो फिर हम वेद का रहस्य कुछ नहीं जान सकते, यह समकक्ष वाद ही है जिसके सहारे वेद समस्त विद्याओं का बीजरूप ज्ञान देने वाला कहाता है।

अब हम इस वाद माला के अन्तिम वाद विज्ञाताश्रय वाद पर आते हैं।

विज्ञाताश्रय वाद

विज्ञाताश्रय वाद यह नाम नया है, वैसे यह कोई नई बात नहीं है किसी अज्ञात वस्तु का स्वरूप जानने के लिए हमें ज्ञात वस्तुओं का आश्रय लेना पड़ता है।

मान लीजिए कि कोई नौकर अंग्रेजी के आयल शब्द का अर्थ नहीं जानता यदि कोई अंग्रेज टूटी फूटी हिन्दी जानता है किन्तु आयल शब्द की हिन्दी भूल गया है वह अपने नौकर से कहता है कि इस दीवे में बत्ती है पर ऑयल नही रहा तुम इसमें बोतल में से ऑयल डाल लाओ जिससे रोशनी हो जाय। इसमें बत्ती है पर ऑयल नहीं है तो नौकर झट समझ जाता है कि ऑयल तेल को कहते हैं। वह साहब से पूछता है, साहब तेल डाल लूं। अंग्रेज झट कहता है हां तेल, तेल हम भूल गया था। तो यहां यह विज्ञाताश्रय वाद के सहारे उसने ऑयल शब्द का अर्थ जान लिया। उसे दीया, बत्ती, जलाना रोशनी इन शब्दों का अर्थ ज्ञात था केवल ऑयल शब्द के अर्थ का ज्ञान नहीं

था सो उसने दीया, बत्ती, जलाना, रोशनी इन विज्ञात शब्दों के आश्रय से आॅयल इस अज्ञात शब्द का अर्थ जान लिया वह इस विज्ञाताश्रय वाद के सहारे हम वेद के सब विवादास्पद शब्दों के ठीक अर्थ का निर्णय कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए वैदिक शब्द मरुत् को ले लीजिए। हमारे विचार से मरुत् का अर्थ सैनिक है। पौराणिक भाष्यकार तथा उनके पिछलग्गू योरोपियन विद्वान् इसका अर्थ पवन का देवता करते हैं। सो इस विवाद का निर्णय नृ शब्द से हो सकता है। ऋग्वेद में मरुत् देवता के ३७ सूक्त हैं इनमें १८ स्थलों पर इनका नरः कहा गया है। इस शब्द ने सायण के लिए कठिनाई उत्पन्न कर दी जिन्हें वह देवता कहता है उन्हें वेद नरः कहता है इससे बचने के लिए सायण ने उसी यौगिकवाद का आश्रय लिया जिसकी आज सर्वत्र हंसी उड़ाई जाती है। वह कहता है, नरः मेघानाम् इतस्ततो नेतारइत्यर्थः परन्तु इस विवाद का अन्तिम निर्णय मृ धातु करती है। मृ धातु का अर्थ प्राण वियोग सर्ववादि सम्मत है इधर सायणादि सब पौराणिक भाष्य कार देवों को अमर बताते हैं। उधर वेद में चार स्थलों पर इन मरुतों को मर्याः अथवा मर्त्ताः कहा गया है। अब यहां तो यौगिक अर्थ भी सायण का साथ नहीं देता उधर मरुत् शब्द स्वयं इस मृधातु से बना है (मृग्रोरुतिः उणादिः १ पाद ८४ सूत्र) इस प्रकार मृधातु के विज्ञातार्थ के सहारे मरुत् एक प्रकार के मनुष्य हैं यह निर्णीत हुआ फिर उनका उत्तम शस्त्र धारण करना पंक्ति बांध कर चलना कन्धे पर हथियार रखना आदि सारा वर्णन एक सैनिक का चित्र खेंच कर रख देता है। इसका विशेष वर्णन मेरे "मरुत्सूक्त" नामक निबन्ध में देखना जो गुरुकुल काङ्गड़ी से प्राप्य है। यहां विस्तार के भय से नहीं दिया जाता, फिर इनको अनेक स्थनों पर 'रुद्रस्य मर्याः' 'रुद्रस्य पुत्राः' 'रुद्रस्य सूनवः' आदि विशेषणों से लक्षित किया गया है जिससे रुद्र का अर्थ सेनापति स्पष्ट हो गया। जो यजुर्वेद रुद्राध्याय में दिए गए सेनान्ये (यजु० अ० १६ म० २६) इस विशेषण से बिलकुल मेल खा जाता है। ऋषि दयानन्द

ने रुद्र का अर्थ सेनापति किया है सो उसकी इस प्रकार बड़े प्रबल प्रमाणों से पुष्टि होती है।

इस प्रकार हमने मृ धातु के सहारे मरुत् का अर्थ जाना फिर मरुत् के सहारे रुद्र का अर्थ जाना इस प्रकार पूर्व विज्ञातार्थ शब्दों के आश्रय से हम उत्तरोत्तर अविज्ञातार्थ शब्दों का अर्थ ठीक निश्चय कर सकते हैं, यह विज्ञाता-र्थवाद ही वेद का ठीक अर्थ निश्चय करने की वैज्ञानिक कुञ्जी है इसको छोड़कर जो पाश्चात्य लोगों ने भाषोत्पत्ति शास्त्र (Philology) के नाम से लाल बुझक्कड़ों से लीला की है उस का कुछ भी मूल्य नहीं है।

मृ धातु का अर्थ वेद में तथा लौकिक संस्कृत में मरना है इस सत्य को करोड़ भाषातत्वविद् किसी प्रकार भी नहीं पलट सकते। परन्तु योरोपयन भाषातत्वविद् तो हमें निरुक्त निघण्टू तथा समस्त भाषा के कोषों को तिला-ञ्जली देने को कहते हैं Vedic age नामक पुस्तक जो विद्या भुवन की ओर से प्रकाशित हुई है उसमें लिखा है—

Shiva and Vedic god Rudna have been identified, it is just likely that the name of the red god of Dravidion speakers the most important divinity in thier pantheon was first rende-red in Aryan speach as Rudra.

(S. K. charteagy Vedic Age)

इस विचित्र पुस्तक Vedic Age में एस० के० चैटर्जी श्रीमुख से कहते हैं कि वैदिक देवता शम्भु तामिल चम्पू है जिसका अर्थ है तांबा। तांबा लाल रंग का होता है सो रुद्र देवता भी लाल रंग का होता है सो रुद्र शब्द पहिले रुधिर था वह तामिल लाल रंग का देवता था। क्योंकि रुधिर अर्थात् खून का रंग लाल होता है इसलिए लाल देवता का नाम रुधिर हुआ और पीछे से वही आर्यों का रुद्र देवता हो गया। बलिहारी है इस सूझ की। शम्भू शब्द श ?

और भू दो शब्दों से बना है यह हम भली प्रकार जानते हैं, फिर हम उसे तामिल चम्बू से क्यों मिलाएं क्योंकि ! श्री चैटर्जी ने ऐसा करने का नादिरशाही हुक्म सादिर किया है, पहिले हम उसका नाम रुधिर रक्खें फिर आर्यों के देवता रुद्र से उसे मिला दें। ऐसा हम क्यों करें ? इस प्रकार का कोई नियम अभी तक हमारी लोक परिषद् (पार्लियामेण्ट) ने नहीं बनाया। बना भी दें तो फिर हमें उसके विरुद्ध घोर सत्याग्रह करना होगा। यदि इन महाशय को सर्व सम्मति से लाल बुभक्कड़ शिरोमणि की उपाधि दे दी जाय तो कुछ अनुचित नहीं होगा। वह विचित्र पुस्तक जो देश का लाखों रुपया बर्बाद करके श्री के० एम० मुन्शी ने प्रकाशित करवाई है। जिसकी चारों ओर धूम है हमें तो संदेह है कि कभी चण्डू खाने में भी किसी ने ऐसा असम्बद्ध प्रलाप किया होगा। किन्तु आज इसी का नाम स्कौलरशिप और ओरिजिनेलिटी है। फिर जब यह पुस्तक देश देशान्तरों में जावेगी तो लोग वेद के सम्बन्ध में कितने घोर अज्ञान के गढ़े में गिरेंगे। विदेशां ही क्यों हमारे देश में भी सम्पूर्ण विश्व-विद्यालयों में यह पुस्तक बड़े आदर के साथ पढ़ाई जाती है। निस्सन्देह हमें इतना कट्टरवादी नही होना चाहिये कि हमारी धर्म्म पुस्तक पर कोई युक्तिहीन प्रहार करे तो हम उसका उत्तर युक्तियों के सिवाय किसी अन्य प्रकार से दें। किन्तु हमें इतना आत्म विहीन भी तो नहीं होनां चाहिये कि हमारी धर्म पुस्तक का ऐसा युक्ति हीन उपहास विश्वविद्यालयों में पाठ्य पुस्तकों के रूप में पढ़ाया जाय मेरी सम्मति में आर्य समाज को इसके विरुद्ध घोर आन्दोलन करना चाहिये जिससे इस प्रकार की पुस्तकें पाठ्य पुस्तकों का स्थान न पा सकें। इसी प्रकार के कपोल, कल्पित इतिहासो का परिणाम वह आर्य द्रविड़ संघर्ष है जो इस समय दक्षिण को विलोडित कर रहा है और जिसका दुष्परिणाम न जाने क्या होगा ? क्या देश के शासक चेतेंगे ? क्या आर्य समाज के अधिकारी चेतेंगे ? क्या आर्य जनता चेतेगी ?

यह तो हुई एक राह चलती बात परन्तु इस प्रकार के अनर्गल प्रलाप करने वालों का मुख तो तब बन्द होगा जब हम वेदों का इस प्रकार युक्ति सङ्गत

भाष्य प्रकाशित कर सकेंगे। इसके लिये आवश्यक है कि पहिले सम्पूर्ण वैदिक देवताओं पर विज्ञाताश्रयवाद की शैली से अनुसन्धान हो, मैं जब आर्य प्रतिनिधि सभा के अनुसन्धान विभाग का अध्यक्ष था तो मैंने यह कार्य प्रारम्भ कराया था। एक पुस्तक ऋभु देवता के सम्बन्ध में निकली भी थी, जिसे पण्डित भगवद्दत्त जी वेदालंकार ने बड़े परिश्रम से लिखा था। वे अब भी गुरुकुल में यथा शक्ति वेद की सेवा कर रहे हैं। परन्तु फिर दलबन्दी की कृपा से वह काय बन्द हो गया।

बीच में एक बार श्री रा. ब. बद्रीदास जी रिपवैन विङ्कल की तरह जागे थे तब कुछ हलचल हुई थी परन्तु यह उन्होंने भी नहीं बताया कि इस कार्य के लिये धन कहां से आएगा। क्योंकि वैदिक देवता सम्बन्धी १६० के लगभग शब्दों पर १०० विद्वान् लगें तो यह कार्य हो इतने तो विद्वान् राज्य की ओर से भी नही लग सकते यह काय तो इस प्रकार हो सकता है कि एक निर्देशक के आधीन यह कार्य आरम्भ ही भिन्न भिन्न आर्य कालिजों तथा गुरुकुलों के अर्पण एक एक देवता कर दिया जाय। बहुत बड़े देवता जिनका वर्णन सहस्रों मन्त्रों में है, कुछ पूरा समय देने वाले कार्य कर्त्ताओं के अर्पण हो। में यह योजना मान कर लिख रहा हूं कि यह सब कार्यकर्त्ता अवैतनिक हों परन्तु इन्हें इकट्ठे करने के लिये भी तो कुछ व्यय होगा वह कौन करे किन्तु इस समय तो इस सङ्गठन के लिये जितना धन अपेक्षित है वह भी हमारे पास नहीं है। मैं स्वयम् जितना सङ्गठन कर सकता हूं प्रभाताश्रम में कर रहा हूं पूज्य पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने भी वेद सम्मेलन द्वारा इस ओर कदम बढ़ाया है। परन्तु सारे आर्य जगत् के सहयोग के बिना यह कार्य असम्भव है आर्य जनता में इस कार्य के लिये जोश भी है परन्तु अति दुस्साध्य रोग है तो आर्य समाज के वर्तमान् नेताओं का है। तो क्या हम निराश हो जावें, कदापि नहीं यदि आर्य जनता इसी प्रकार लगी रही तो आर्य नेता भी सीधे मार्ग पर आ ही जावेंगे।

निराश होने के लिए सचमुच कोई कारण नहीं। इन पिछले ३० वर्षों में हमने प्रगति की है। आज से ३० वर्ष पहिले वेद के विषय में हमें जितना ज्ञान था उससे हम बहुत आगे बढ़ गए है। ऋषि दयानन्द के पश्चात् सब से पहिले पं० शिव शंकर जी काव्यतीर्थ ने अपने अपूर्व सूझ के ग्रन्थ लिखे, उसके पश्चात् पं० सातवलेकर जी मैदान में आए, यद्यपि आज वे हमारा साथ छोड़ गए हैं और श्री कृष्ण की १६ हजार स्त्रिएं तक सिद्ध करना अपना कर्तव्य समझने लगे हैं परन्तु आरम्भिक युग में उन्होंने जो कार्य किया उसे याद न करना घोर कृतघ्नता होगी। उसके पश्चात् वेद को सच्चे अर्थों में लोकप्रिय बनाने का सबसे अधिक श्रेय यदि किसी को दिया जा सकता है तो वैदिक विनय के लेखक आचार्य अभय देव जी को। श्री चमूपति जी तथा श्री स्वामी वेदानन्द जी को भी इस प्रसंग में भुलाया नहीं जा सकता। पं० चमूपति जी तो कभी २ एसी ऊंची उड़ानें लेते थे, जिन्हें याद करके आज भी दिल भर आता है। फिर भला चतुर्वेद भाष्यकार श्री पं० जयदेव जी शर्मा विद्यालंकार को मैं कैसे भुलाऊं उनके भाष्य से यत्र तत्र कुछ स्थलों से किसी को भले ही मतभेद हो। परन्तु उन्होंने चारों वेदों का एक सरल भाष्य जनता के हाथ में पहुंचा दिया है। और नाही मैं श्री क्षेमकरण दास जी त्रिवेदी को भुला सकता हूं जिन्होंने वृद्धावस्था में आरम्भ से संस्कृत पढ़ना आरम्भ करके अथर्व वेद भाष्य द्वारा नवयुवकों के सामने एक अपूर्व आदर्श रक्खा। पं० चन्द्रमणि जी का निरुक्त भाष्य भी भुलाने योग्य वस्तु नहीं है। श्री पं० प्रिय रत्न जी आर्ष (स्वा० ब्रह्ममुनि जी) ने भी ४० के लगभग ग्रन्थ लिखे यह क्या कोई छोटी सेवा है। पं० धर्मदेव जी विद्या वाचस्पति ने भी वैदिक समाज शास्त्र आदि ग्रन्थ लिखकर अच्छी सेवा की है। श्री पं० प्रियव्रत जी वेद वाचस्पति आचार्य गुरुकुल काङ्गड़ी ने भी वेदों के राजनैतिक सिद्धान्त नामक एक विशाल ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया था जो आधे से अधिक लिखा भी गया अब अवकाश न मिलने के कारण अधूरा पड़ा है प्रभु की कृपा से जब कभी जनता के सामने आएगा तो अपने ढंग का एक अनूठा ग्रन्थ होगा। श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु तथा उनके प्रिय अन्तेवासी श्री युधिष्ठर जी मीमांसक ने व्याकरण की दृष्टि से ऋषि के यजुर्वेद भाष्य में

बहुत से स्थलों में समाधान करने का यत्न किया है, वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। श्री आचार्य विश्वश्रवाः जी भी वेद भाष्य के कार्य में संलग्न हैं। और ब्रह्मचारी उपर्बुद्ध जी से भी बहुत आशाएं हैं, यदि संसार की मृगतृष्णा ने उन्हें न खेंच लिया तो वे इस क्षेत्र में अपना निराला स्थान बनाकर ही रहेंगे। अन्य भी कई नाम मुझसे छूट गए होंगे उन सबसे मेरा एक ही निवेदन है वह है 'मौलौ प्रणामाञ्जलि।''

वेद की सेवा करने वालों की एक और श्रेणी है जिन्होंने अपने ढंग से ऋषि दयानन्द के दुर्ग को अभेद्य बनाने में बड़ा भाग लिया है वह क्षेत्र है ऐतिहासिक पक्ष द्वारा वेद पर आक्षेपों के समाधार का क्षेत्र उस क्षेत्र के अग्रदूत और अपने समय के सिद्ध हस्त सेनानी आचार्य रामदेव जी को मैं कैसे भुला दूं। जिन्होंने वैदिक मेगजीन द्वारा वेद का नाद देश देशांतरो में पहुंचाया वे संस्कृत नहीं के तुल्य जानते थे तथापि अपने विशाल और व्यापक अध्ययन तथा प्रौढ़ विचार शक्ति के द्वारा वह कभी कभी वैदिक मन्त्रों की ऐसी व्याख्या करते थे जो अच्छे २ पण्डितों को चकित कर सकती थी जिसका,उदाहरण ब्राह्मणोऽस्य मुखामसीद् इस मन्त्र की वह व्याख्या है जो आज भी वैदिक मेगजीन के पुराने स्तवकों में पढ़ने को मिल सकती है। इस क्षेत्र में श्री भगवद्दत जी बी० ए० रिसर्च स्कालर भी ऋषि दयानन्द के पक्ष को पुष्ट करने का विशाल प्रयत्न कर रहे हैं। यद्यपि उनकी बहुत सी स्थापनाओं से सहमत होना कठिन प्रतीत होता है। तथापि उनका दृष्टि बिन्दु ऋषि के पक्ष को यथा शक्ति समर्थन करने का है। इसलिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। इसमें तो सन्देह नहीं कि तिथि क्रम के सम्बन्ध में विदेशी विद्वान् भी उनका लोहा मानने लगे हैं। यदि सन्देह है तो इस विषय में कि भारतीय इतिहास कीं पुरानी परम्पराओं को कहां तक पुष्टि मिलती है, तथापि उनका प्रयत्न अभिनन्दनीय है।

आज संस्कृत पढ़ने का तथा वेद मन्त्र याद करने का तथा उनके अर्थ जानने का चाव आर्य समाज में पहिले से बहुत अधिक है तथा दिनों दिन बढ़ रहा है। आज उन घरों की संख्या भी सहस्रों में है जिनमें संध्या, अग्निहोत्र नियम से होते हैं। वेद के परायण यज्ञ भी समाजों में प्रायः होते रहते हैं। बस

यदि कोई मोह निद्रा में लीन है, तो आर्य समाज के नेता लोग, सो उनके प्रति भी हम निराश क्यों हों आर्य जनता की सम्मिलित आवाज उन्हें भी जगा कर रहेगी। उस अखण्ड ब्रह्मचारी का तप कभी निष्फल नहीं जा सकता, दुनिया बदल रही है और बदल कर रहेगी, धरती बदलेगी, आकाश बदलेगा, प्रजा बदलेगी राजा बदलेगा, नदी, पर्वत, समुद्र सब हमें रास्ता देंगे, यहां तक कि आर्य समाज के नेता भी बदल कर ही रहेंगे। वेद का नाद संसार में गूंज कर ही रहेगा।

अन्त में आप ने मेरे हृदय में चिरकाल से दबी ज्वाला का फूट कर निकलने का जो यह शुभ अवसर दिया है उसके लिये आपका धन्यवाद करता हूं।

और यदि मेरे इस निबन्ध से आप प्रसन्न हुए हैं तो आप से यही वरदान मांगता हूं कि एक बार महता कण्ठेन मिल कर बोलिये—

ऋषि दयानन्द की जय! वैदिक धर्म की जय!!

इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ दान दाताओं के नाम—

(१) श्री समैसिंह जी (नेक ग्राम) ने अपने पुत्र प्रिय सुखपाल जी के विवाह के उपलक्ष में—

(२) जानी के आर्य सदस्यों के द्वारा — १०१ रुपये

(३) चौधरी प्रताप सिंह जी करनाल — १०० रुपये

स्वामी समर्पणानन्द जी द्वार

अपूर्व साहित्य

१. शतपथ ब्राह्मण का भाष्य (पौने तीन का
जगत चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहा है।
२ पञ्च यज्ञ प्रकाश (प्रकाशित)
३. अथर्व वेद भाष्य (केवल चौदहवां काण्ड)
४. काया कल्प (प्रकाशित)
५. किसकी सेना में भरती होंगे।
६. ऋग्वेद का मणि सूत्र (छपेगा)
७. गीता भाष्य (छप रहा है)
८. अथर्व वेद भाष्य (प्रथम द्वितीय काण्ड)
९. वेदों के सम्बन्ध में क्या जानो और क्या भूलो
१०. सोम
११. शतपथ में एक पथ
१२. मरुत सूक्त
१३. उसकी राह पर
१४. भक्ति लहरी
१५. धक्का किस ओर
१६. सुर और असुर
१७. सोम और सुरा
१८. प्रातः सूक्त
१९. तिरंगा झण्डा
२०. मध्यम मार्ग

नोटः—इसके अन्य भी उनके द्वारा लिखित साहित्य पढ़े।
धरती तल पर वेद विषय में पं० बुद्ध देव जी जैसी सूझ किसी की नहीं

(पं० भगवद् दत्त)